सम्पादकीय

महान अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति के सौ वर्ष एक नये युग की शुरुआत

वर्ष 2017 महान अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति का शताब्दी वर्ष है। दुनियाभर में मेहनतकश वर्गों के संगठन तथा न्याय और समता पर आधारित समाज का सपना देखने और उसे जमीन पर उतारने के लिए प्रयासरत लोग इस सौवीं वर्षगाँठ को अपने-अपने तरीके से याद कर रहे हैं।

1917 की बोल्शेविक क्रान्ति ने पूरी दुनिया में क्रान्तिकारी बदलाव के एक नये दौर का उद्घोष किया। इसने एक ऐसी दुनिया के सपने को साकार किया था जिसमें शहीद भगत सिंह के शब्दों में "एक वर्ग दूसरे वर्ग का और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का शोषण-उत्पीड़न न कर सके।" जहाँ न्याय और समता केवल सुहावने शब्द भर नहीं बल्कि जमीनी हकीकत हो।

1917 की रूसी क्रान्ति कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। यह मजबूत वैचारिक आधार पर संगठित एक योजनाबद्ध कार्रवाई थी। यह एक लम्बे वैचारिक तैयारी की परिणति थी जिसकी शुरुआत रूसी क्रान्ति के 70 साल पहले 1848 में मार्क्स-एंगेल्स द्वारा ''कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणपत्र'' के प्रकाशन के साथ हुई थी, इसके बाद से ही वैज्ञानिक समाजवाद की वैचारिक बुनियाद वाद-विवाद-संवाद के जरिये लगातार मजबूत होती गयी। मार्क्स-एंगेल्स ने जीवन भर मजदूर वर्ग के भीतर उठने वाले नाना प्रकार के अवसरवाद और वैचारिक भटकाव से संघर्ष किया और मार्क्सवाद के आर्थिक, राजनीतिक, वैचारिक, सांस्कृतिक और सौन्दर्यात्मक पहलू को पूर्णता तक पहुँचाया। साथ ही यूरोप के विभिन्न देशों में चल रहे मजदूर आन्दोलनों को वैचारिक-राजनीतिक नेतृत्व प्रदान किया और उनका समाहार करते हुए सर्वहारा विचारधारा को समृद्ध किया। 1871 के पेरिस कम्यून की स्थापना करने वाले कम्युनार्डों के शौर्यपूर्ण संघर्ष का वैचारिक आधार वैज्ञानिक समाजवाद ही था जिन्होंने 72 दिनों तक पेरिस में मजदूर वर्ग की सत्ता कायम की। यूरोप की प्रतिक्रियावादी ताकतों के सामूहिक हमले ने पेरिस कम्यून को खून में डुबो दिया लेकिन उस वीरगाथा के बलिदानी अनुभवों का निचोड़ निकाल कर मार्क्स ने वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्त को नयी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। उन्हीं सिद्धान्तों को उच्चतर धरातल पर अमल में लाते हुए अक्टूबर क्रान्ति सम्पन्न हुई और उसके बाद उन विचारों को ठोस रूप दिया गया। पेरिस कम्यून का अनुभव यही था कि सर्वहारा वर्ग राज्य की पुरानी मशीनरी को बनाये रखते हुए समाजवाद का निर्माण नहीं कर सकता। इसी सन्दर्भ में, दूसरे इन्टरनेशनल के नेता काउत्सकी ने प्रथम विश्व युद्ध के ठीक पहले साम्राज्यवाद और साम्राज्यवादी युद्ध के बारे में जो विभ्रम फैलाया था, उसे भी रेखाकिंत करना जरूरी है। काउत्सकी ने लूट-खसोट के लिए साम्राज्यवादी देशों द्वारा की जा रही युद्ध की तैयारियों को सर्वहारा के हित में बताते हुए मजदूर वर्ग से अपने-अपने देशों के पूँजीपति वर्ग का साथ देने की सिफारिश की। लेनिन ने सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयतावाद को अंधराष्ट्रवाद में बदलने के इस कुत्सित प्रयास का पर्दाफाश किया और दूसरे इन्टरनेशनल के गद्दार नेताओं को अलग-थलग कर विश्व सर्वहारा का वैचारिक नेतृत्व किया। निश्चय ही, 1917 की फरवरी क्रान्ति और अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति की सफलता के पीछे दूसरे इन्टरनेशनल के पथभ्रष्ट नेताओं के खिलाफ लेनिन के नेतृत्व में चलाये गये वैचारिक संघर्ष की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

1917 की दो क्रान्तियों में हुआ क्या था? पहली क्रान्ति जो फरवरी में सम्पन्न हुई, उसमें व्यापक मेहनतकश जनता ने जार की तानाशाही को उखाड़ फेंका। चूँकि रूस में सामन्ती शासन था, इसलिए इस क्रान्ति का स्वरूप जनवादी क्रान्ति था। क्रान्ति के बाद मजदूर वर्ग ने सत्ता पूँजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों और अभिजात्य वर्ग को सौंप दी। लेकिन पूँजीपति वर्ग ने जनवादी क्रान्ति के किसी भी कार्यभार को पूरा नहीं किया। आमूल भूमि सुधार नहीं किया गया, जारशाही द्वारा शुरू किये गये विश्व युद्ध का परित्याग नहीं किया गया, आठ घंटे का कार्यदिवस लागू नहीं हुआ और मजदूरों के जनवादी अधिकारों की गारंटी नहीं की गयी। इतना ही फर्क पड़ा कि एक सम्पत्तिशाली वर्ग (सामन्त) की जगह दूसरे सम्पत्तिशाली वर्ग (पूँजीपति) का सत्ता पर कब्जा हो गया। मजदूर, किसान और सैनिक उन नये जारों के क्रान्ति विरोधी छल-प्रपंचों को समझने लगे और उन्होंने उसके खिलाफ राजनीतिक संघर्ष तेज कर दिया। उन्होंने माँग की कि फरवरी क्रान्ति के दौरान चुने गये मजदूरों-सैनिकों की सोवियतों को सत्ता सौंप दी जाये। लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविक पार्टी ने दूसरी क्रान्ति, समाजवादी क्रान्ति का नारा दिया, जो काफी जद्दोजहद के बाद अक्टूबर में सफल हुआ।

समाजवादी क्रान्ति जितनी आसानी से सम्पन्न हुई, उसे टिकाये रखने में उतनी ही मुश्किलों का सामना करना पड़ा। देश के भीतर मजदूर वर्ग ने सम्पत्ति का हरण करने वाले जिन वर्गों को सम्पत्ति से बेदखल किया था, वे अपना खोया हुआ स्वर्ग दुबारा हासिल करने के लिए लगातार हाथ-पाँव मारते रहे। इसलिए नयी सोवियत सत्ता को चार वर्षों तक रक्तरंजित गृहयुद्ध का सामना करना पड़ा। अमरीका, ब्रिटेन और फ्रांस की सेनाएँ रूसी प्रतिक्रियावादियों को दो वर्षों तक सैनिक साजो-

सामान मुहय्या करती रही। इसके आलावा, इक्कीस साम्राज्यवादी देशों की घेराबन्दी और प्रतिबन्ध का सामना करना भी आसान नहीं था, क्योंकि रूस की उत्पादक शक्तियाँ यूरोप के दूसरे देशों की तुलना में पिछड़ी हुई थीं। इन दबावों के चलते सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधियों का आर्थिक आधार और अधिरचना दोनों ही स्तर पर कई समझौते करने पड़े। नयी आर्थिक नीति के तहत निजी पूँजी को ढेर सारी रिआयतें देनी पड़ी और प्रतिक्रान्तिकारियों को नियंत्रित करने के लिए नागरिक अधिकारों में कटौती और राजनीतिक दमन का सहारा लेना पड़ा। यह कोई आदर्श स्थिति नहीं थी, बल्कि क्रान्ति के भीतरी और बाहरी दुश्मनों को परास्त करने के लिए यह सब अपरिहार्य था।

तमाम कठिनाइयों के बावजूद सोवियत सत्ता कायम रही। इसने यह साबित कर दिया कि सामन्ती जमींदारों, पूँजीपतियों और सूदखोरों के बिना भी समाज का संचालन कहीं बेहतर ढंग से किया जा सकता है। मजदूरों-किसानों की सोवियत राजसत्ता का चरित्र कैसा था, इसके बारे में लेनिन ने कहा था-

''...रूस में नौकरशाहाना मशीनरी को चकनाचूर कर दिया गया, उसे मिट्टी में मिला दिया गया, पुराने मुंसिफों को बोरिया-बिस्तरा बाँधकर चलता कर दिया गया, पूँजीवादी संसद को भंग कर दिया गया और मजदूरों-किसानों को कहीं ज्यादा सुलभ नुमाइन्दगी मुहैय्या की गयी, उनकी सोवियतों (पंचायतों) ने नौकरशाही की जगह ले ली या नौकरशाही को काबू में रखने के लिए सोवियतों को तैनात कर दिया गया और उनकी सोवियतों को मुंसिफ चुनने का अख्तियार दे दिया गया। अकेली यही हकीकत सभी मजलूम तबकों के लिए यह मानने की वजह है कि सोवियत सत्ता, यानी सर्वहारा की तानाशाही का मौजूदा रूप बढ़िया से बढ़िया लोकतांत्रिक पूँजीवादी गणतंत्र से लाख गुना ज्यादा लोकतांत्रिक है।'' (सर्वहारा की तानाशाही और गद्दार काउत्सकी)

क्रान्ति के बाद अर्थव्यवस्था को नये आधारों पर ढाला गया, बाजार की अन्धी ताकतों और मुनाफाखोरी की जगह योजनाबद्ध विकास की शुरुआत हुई, जिसमें उत्पादन का मकसद मुट्ठीभर लोगों का मुनाफा नहीं, बल्कि जन-जन की जरूरतें पूरी करना हो। सदियों से ठहरावग्रस्त रूसी अर्थव्यवस्था पहले लेनिन और उनकी मृत्यु के बाद स्तालिन की अगुआई में छलांग लगाकर आगे बढ़ी। जिस समय पूरी दुनिया मन्दी में गोते लगा रही थी उसी समय रूस की आर्थिक विकास दर 35 फीसदी तक पहुँच गयी थी। अशिक्षा, बीमारी, नशाखोरी, वैश्यावृत्ति और अपराध का खात्मा हो गया। आर्थिक जीवन में ही नहीं बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक जीवन में भी सर्वोच्च मानव मूल्यों का बीजारोपण हुआ। यूरोप का सबसे अभागा और पिछड़ा देश रूस कुछ ही वर्षों में अगली कतारों में आ खड़ा हुआ। सोवियत रूस के कारनामों को रविन्द्रनाथ टैगोर, जवाहरलाल नेहरु सहित दुनिया की जानीमानी हस्तियों ने प्रशंसा की थी।

अक्टूबर क्रान्ति की मशाल ने सिर्फ रूस को ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया की मेहनतकश जनता को मुक्ति का संदेश दिया। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय शोषण-उत्पीड़न से मुक्ति का सन्देश दुनिया के कोने-कोने तक पहुँच गया। रूसी मजदूरों-किसानों का सपना दुनिया की कोटि-कोटि जनता की आँखों में समा गया। अगले कुछ ही वर्षों में दुनिया के हर देश में, यहाँ तक कि उपनिवेशिक गुलामी की जंजीरों में जकड़े भारत जैसे देशों में भी मजदूर वर्ग की पार्टी की बुनियाद रखी जाने लगी।

जिस समय सोवियत रूस जीवन के हर क्षेत्र में नये-नये कीर्तिमान स्थापित कर रहा था और पूरी दुनिया की मुक्तिकामी जनता को नैतिक-भौतिक प्रोत्साहन दे रहा था, उसी समय साम्राज्यवादी देशों के बीच दुनिया के बाजारों और प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जे और पुनर्बंटवारे के लिए दूसरा महायुद्ध छिड़ गया। हिटलर के फासीवादी मनसूबों का असली निशाना सोवियत संघ ही था। युद्ध के चलते समाजवादी अर्थव्यवस्था को भारी नुकसान उठाना पड़ा, फिर भी सोवियत प्रणाली कायम रही। लाल सेना ने हिटलर की 254 डिविजनों में से 200 डिविजनों का मुकाबला किया, फासीवाद को धूल चटायी, हिटलर को आत्महत्या करने पर मजबूर किया और पूर्वी यूरोप के देशों को मुक्त कराया। इस लड़ाई में रूस की 2 करोड़ जनता ने बलिदान दिया, लेकिन युद्ध की समाप्ति तक समाजवाद केवल रूस तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि आधी धरती लाल हो गयी।

इन उपलब्धियों और कीर्तिमानों के बीच एक ऐसी दुखद घटना हुई जिसने दुनिया के पहले समाजवादी देश की दिशा बदल दी। जिस समय रूस अन्तरिक्ष में स्पूतनिक भेजने की स्थिति में पहुँच गया, उसी समय ख्रुश्चेव ने समाजवाद का झण्डा धूल में फेंक दिया। 1956 में स्तालिन की मृत्यु के बाद सत्ता में आते ही ख्रुश्चेव ने तीन वर्षों तक अपनी संशोधनवादी नीतियों को लागू किया और पूँजीवादी पुनर्स्थापना का प्रयास किया, फिर 1956 की 20वीं पार्टी कांग्रेस में उसने स्तालिन के खिलाफ कुत्सित इल्जाम लगाये, समाजवाद की उपलब्धियों पर कीचड़ उछाला तथा तीन शान्ति का सिद्धान्त- शान्तिपूर्ण संक्रमण, शान्तिपूर्ण प्रतियोगिता और शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व का भ्रामक सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उसने समाजवादी अर्थव्यवस्था की जगह पर राजकीय इजारेदार पूँजीवाद की नींव रखी तथा सभी वर्गों की पार्टी और सभी वर्गों की राजसत्ता की आड़ में सोवियत व्यवस्था की जगह निरंकुश नौकरशाही राजसत्ता को मजबूत बनाया। देर से ही सही, माओ के नेतृत्व में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने 1963 में इन पूँजीवादी पथगामियों का भंडाफोड़ किया। महान बहस के दौरान ख्रुश्चेवी संशोधनवाद का खण्डन किया और 1966 में ''सौ फूलों को खिलने दो, हजार विचारों को आगे आने दो'' के नारे के साथ महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शुरुआत की। उन्होंने सोवियत समाज की भूलों-गलतियों का सार-संकलन किया और सोवियत समाज में विशेष रूप से अधिरचना के क्षेत्र में निरन्तर क्रान्तिकारी रूपान्तरण और वर्ग संघर्ष के संचालन का सिद्धान्त विकसित किया। निश्चय ही ख्रुश्चेवी संशोधनवाद और पूँजीवादी पुनर्स्थापना के पीछे वस्तुगत सीमाओं के साथ-साथ मनोगत गलतियों और नेतृत्व की भूलों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इनमें से अधिकांश भूलों-गलतियों को माओ के नेतृत्व में चीन की तत्कालीन कम्युनिस्ट पार्टी ने चिन्हित किया और उनसे बचने के उपाय भी निकाले। यहाँ इस छोटे से लेख में इस बारे में विस्तार से चर्चा करना सम्भव नहीं,

लेकिन यह एक जरूरी विषय है जिसको समझकर ही भावी क्रान्तियों का मार्ग प्रशस्त होगा। यहाँ यह स्पष्ट करना जरूरी है कि रूस में वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा के आधार पर, मार्क्स और लेनिन के विचारों के आधार पर किये गये समाजवादी प्रयोग का असफल होना विचारधारा की असफलता नहीं थी। वैज्ञानिक प्रयोगों की निरन्तर असफलता के जरिये ही विज्ञान समृद्ध और परिपूर्ण होता है। यही मार्क्सवाद के साथ भी हुआ।

1990 के आसपास सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप का विघटन सही मायने में समाजवाद का नहीं, बल्कि ख्रुश्चेव काल से चले आ रहे राजकीय इजारेदार पूँजीवाद और समाजवाद के खोल में छिपी पूँजीवादी तानाशाही का पतन था। दुनियाभर के पूँजीवादी बुद्धिजीवी और उनके सिद्धान्तकार इस बात से भलीभाँति परिचित थे। लेकिन उन्होंने समाजवाद पर कीचड़ उछालने के लिए उस नकली समाजवाद की मौत का जश्न मनाया, ''इतिहास का अन्त'' और ''पूँजीवाद का कोई विकल्प नहीं'' जैसे नारे उछाले, लेकिन सच्चाई यही है कि आज भी उन्हें समाजवादी क्रान्ति का भूत सता रहा है। 1990 के बाद अमरीकी चौधराहट में विश्व पूँजीवाद के गलियारे से जिस ''अमरीकी शताब्दी'', ''एक ध्रुवीय विश्व'', ''नयी विश्व व्यवस्था'' और ढाँचागत समायोजन तथा वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण का शंख फूँका गया था उसकी आवाज जल्दी ही गायब हो गयी। हाँ, इतना जरूर हुआ कि साम्राज्यवादी खेमा बेलगाम हो गया। दुनिया भर में प्राकृतिक संसाधनों की लूट, विश्व व्यवस्था के विरोधी देशों की घेराबन्दी, उन देशों पर एक तरफा हमला और बमबारी लाखों लोगों का कत्लेआम, दुनिया भर में अमीरी-गरीबी के बीच बढ़ती खाई, लोकतांत्रित मूल्यों, संस्थाओं का तेजी से क्षरण दुनिया भर में आर्थिक संकटों का अटूट सिलसिला, भुखमरी, बेरोजगारी, कलग-विग्रह। जो दुर्दशा पहले पूँजीवादी देशों तक सीमित थी आज वह पूरी धरती पर पसर चुकी है। सांस्कृतिक पतन और पर्यावरण का विनाश अपने चरम पर है।

साम्राज्यवाद की इन तबाहियों के मद्देनजर पूँजीवादी विद्वानों का सुर भी बदलने लगा। दुनिया भर में पूँजीवाद के विकल्प की तलाश और उसके लिए जुझारु संघर्ष शुरू हो गये। ''इतिहास का अन्त'' के उद्घोषक फ्रांसिक फूकोयामा ने हाल ही में अमरीका को ''असफल राज्य'' बताया है।

इकोनोमिस्ट पत्रिका के टीकाकार एड्रियन बुल्डिज फुकोयामा से चार कदम आगे जाकर चेतावनी देते हैं- "बोल्शेविक लौट आये हैं। जिस दुनिया ने रूसी क्रान्ति को जन्म दिया था, उससे मिलता-जुलता समय इतना करीब है कि हम चैन से नहीं रह सकते। यह दुखदायी शताब्दियों का दौर है। पहला 1914, जब पहले महायुद्ध की शुरुआत हुई थी, जिसने उदारवादी व्यवस्था को नष्ट कर दिया था। फिर, 1916 जर्मनों के खिलाफ ब्रिटेन और फ्रांस का सोम्मे की लड़ाई, जो सैनिक इतिहास का सबसे रक्तरंजित युद्ध था। 2017 में लेनिन द्वारा रूसी सत्ता पर कब्जा किये जाने की सौंवी सालगिरह होगी।''

आज जब हम 1917 की अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति को याद कर रहे हैं, तब पूरी दुनिया में क्रान्ति की वस्तुगत परिस्थितियाँ पूरी तरह तैयार हैं। पूँजीवाद-साम्राज्यवाद का आवर्ती संकट आज अन्तहीन, चिरन्तन मरणान्तक संकट का रूप धारण कर चुका है। विश्व जनगण को देने के लिए उसकी झोली में कुछ भी सकारात्मक नहीं है। लेकिन यह भी सच है कि क्रान्ति की मनोगत शक्तियाँ उतनी ही बिखरी हुई, विभ्रमग्रस्त और कमजोर हैं। आज विश्व सर्वहारा की कोई जीती हुई चौकी नहीं, समाजवाद का कोई मॉडल नहीं, कोई सर्वमान्य नेतृत्व या अन्तरराष्ट्रीय केन्द्र नहीं। लेकिन यदि 1917 के पहले की स्थितियों से तुलना करें तो आज पूरी दुनिया में उत्पादक शक्तियों का विकास उस मुकाम तक पहुँच गया है कि वस्तुगत रूप से समाजवादी क्रान्ति को टिकाये रखना आज पहले के मुकाबले बेहद आसान होगा। जहाँ तक विचारधारा का प्रश्न है, रूसी क्रान्तिकारियों को पेरिस कम्यून की रोशनी में सब कुछ नये सिरे से रचना था। आज हमारे सामने 20वीं सदी की क्रान्तियों की जय-पराजय के अनमोल अनुभव और उनके द्वारा सृजित सामाजिक सांस्कृतिक रचनाओं की समृद्ध धरोहर है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस सदी का सबसे प्यारा रंग लाल ही होगा।

पैरों से रौंदे हुए आजादी के फूल
आज नष्ट हो गये हैं
अन्धेरे के स्वामी
रोशनी की दुनिया का खौफ देख खुश हैं
मगर उस फूल के फल ने
पनाह ली है जन्म देने वाली मिट्टी में,
माँ के गर्भ में,
आँखों से ओझल उस गहरे रहस्य में
विचित्र उस कण ने अपने को जिला रखा है
मिट्टी उसे ताकत देगी, मिट्टी उसे गर्मी देगी
उगेगा वह एक नया जन्म लेकर
एक नयी आजादी का बीज वह लायेगा।
फाड़ डालेगा बर्फ की चादर वह विशाल वृक्ष
लाल पत्रों को फैलाकर वह उठेगा
दुनिया को रौशन करेगा
सारी दुनिया को, जनता को
अपनी छाँह में इकठ्ठा करेगा।

--लेनिन

रूसी क्रान्ति की कुछ घटनाएँ

पिछले महायुद्ध के दरम्यान 1917 में जब संसार ने सुना कि रूस में क्रान्ति हो गयी तो उसके अचरज का ठिकाना न रहा। रूस में क्रान्ति हो गयी! पन्द्रह करोड़ आबादी वाले इस महादेश पर मजदूर-किसानों का राज्य कायम हो गया! उफ, किमाश्चर्यमतोऽपरम्।...

सड़कों पर जगह-जगह जल रही आग मद्धम पड़ने लगी थी। सुदूर क्षितिज पर उजाला दिखायी दे रहा था। धीरे-धीरे क्षितिज सुर्ख हो गया। सुबह लगभग 6 बजे सभा खत्म हो गयी। शहर में लोग खबर जानने के लिए समाचार-पत्रों पर टूट पड़े। बुर्जुआ अखबारों ने भ्रामक खबरें फैलायी थीं। उनका शहर में फैली अफवाहों से अधिक सम्बन्ध नहीं था। शरद महल के पतन की खबर अखबारों में नहीं थी। जो भी हो मन्त्री कैद में थे। केरेन्स्की का अता-पता नहीं था। अधिकारी गुस्से में सिर धुन रहे थे। पत्रकार और वकील एक-दूसरे से नोक-झोंक में व्यस्त थे। सम्पादक अपने विचारों को ही इकट्ठा करने की जी-तोड़ कोशिश में लगे हुए थे। दुकानदार असमंजस में थे कि धन्धा शुरू करें या नहीं। नये शासन ने आदेश दिया कि सभी काम-धन्धा जारी रखे जायें। रेस्टोरेण्ट खुल गये। ट्राम कारें घूमने लगीं। बैंक अपशकुन की आशंका में बेहाल हो गये। शेयर बाजार लड़खड़ा गया। अफवाहों का बाजार गर्म था। बोल्शेविक अधिक दिनों तक सत्ता सम्हाल नहीं सकेंगे। वे धड़ाम से गिरने के पहले ही अपना विनाश कर लेंगे।...

हजारों कुर्बानियाँ देकर इन्कलाब सम्पन्न हुआ था। लाखों लोग युद्ध में मारे गये थे। बिना प्रसव पीड़ा के नये शिशु का जन्म नहीं होता। नया राष्ट्र जन्म ले रहा था। लोगों ने गमगीन आँखों से 'श्रद्धांजलि' गीत गाया।...

किसान और उनके सैनिक बेटों ने जब देखा कि गाँव की सत्ता कमजोर पड़ रही है, तो उन्होंने जमींदारियों को जब्त करना शुरू किया। मोर्चे से भागे सैनिक गाँवों में आ गये। इससे उनका आन्दोलन नयी ऊँचाई पर पहुँच गया। रूस के गाँवों में कृषि क्रान्ति का तूफान उठ खड़ा हुआ। ...

क्रान्ति टेढ़े-मेढ़े रास्ते से अक्टूबर बगावत की ओर बढ़ गयी। इसने मोर्चे, गाँवों और प्रान्तों में अपना विस्तार किया। अक्टूबर बगावत से पहले की सभी घटनायें इसके लिए पूर्वाभ्यास साबित हुईं। दुहरी सत्ता में बुर्जुआ का पलड़ा कमजोर पड़ गया था और सर्वहारा का पलड़ा भारी।...

(श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी की किताब 'रूस की क्रान्ति' से)

पाठकों से अपील

❑ **'देश-विदेश' अंक 25 आपके हाथ में है। हमारा प्रयास है कि इसे अनियतकालीन पत्रिका की जगह हर तीन माह पर नियमित प्रकाशित किया जाय।**

❑ **जिन साथियों को पत्रिका निरन्तर डाक से भेजी जा रही है, वे कृपया सूचित करें कि उन्हें पत्रिका मिल रही है या नहीं और उन्हें आगे से भेजी जाय या नहीं।**

❑ **देश-विदेश अव्यवसायिक पत्रिका है। यह साथियों के श्रम और सहयोग से ही प्रकाशित होती है। आर्थिक संकट से जूझते हुए अब तक हमने 25 अंक निकाले। पाठकों के सहयोग से ही यह सम्भव हो पाया।**

❑ **पत्रिका अभी भी अनियमित है, इसलिए नियमित चन्दे की दर तय करना सम्भव नहीं। डाक से मँगवाने के लिए 5 अंकों की सहयोग राशि 100 रुपये या आजीवन सदस्यता न्यूनतम 1000 रुपये निम्नलिखित बैंक खाते में अन्तरित करें। और इसकी सूचना एसएमएस या ई मेल से भेज दें।**

नाम : अतुल कुमार गुप्ता
मोबाईल नम्बर : 9810104481, 8510910358
S.B. A/C : 601510100024041
IFSC : BKID 0006015
बैंक ऑफ इण्डिया,
जीटी रोड, शाहदरा, दिल्ली-32

नोटबन्दी : बेरहम सरकार की कुटिल कुचाल

--विक्रम प्रताप

नोटबन्दी लागू हुए तीन महीने बीत गये हैं। अब थोड़ी तसल्ली से इस फैसले की जाँच-पड़ताल की जा सकती है। 8 नवम्बर को नोटबन्दी की घोषणा करते हुए प्रधानमन्त्री ने तीन दावे किये थे। उन्होंने कहा था कि नोटबन्दी से आतंकवाद पर लगाम लगेगी, जाली नोटों पर शिकंजा कसा जायेगा और कालाधन, यानी भ्रष्टाचार मिट जायेगा। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। इसके उलट, नोटबन्दी के बाद जनता की दुःख-तकलीफें बढ़ गयीं। एटीएम और बैंकों से पैसे निकालने की सीमा बाँध दी गयी जो आज भी जारी है। इससे एटीएम और बैंको के बाहर लोगों की लम्बी कतारें लग गयीं। मोदी जी ने गोवा की एक रैली में कहा कि उन्हें नोटबन्दी के लिए 50 दिन दे दीजिये। बाद में उन्होंने जज्बाती अन्दाज में कहा कि गरीब खुश हैं और भ्रष्ट लाइन में लगे हैं। इसके बाद वे भावुक होकर रोने लगे। हालाँकि वे कितने दुःखी थे, इसका पता तो तभी चल गया, जब इस गम में उन्होंने अपनी अगली रैली में एक दिन में तीन बार पोशाक बदली।

नोटबन्दी के इस फैसले के चलते एटीएम और बैंकों की कतारों में गिरकर और नकदी की कमी से इलाज न मिल पाने के चलते सौ से अधिक लोग मारे गये। वित्तमन्त्री ने जनता की तकलीफों का मजाक बनाते हुए उसकी बदतर हालत की तुलना अंग्रेजों के खिलाफ आजादी के संघर्ष में जनता के त्याग-बलिदान से कर दी। यह जनता के जख्मों पर नमक लगाने जैसा साबित हुआ। लोग भड़क गये। व्यक्तिगत स्तर पर और छोटे ग्रुपों में लोगों ने अपना विरोध जताया। विरोध के वीडियो बनाकर यू-टयूब और फेसबुक जैसी सोशल वेबसाइटों पर अपलोड किये गये। इन वेबसाइटों पर सरकार के खिलाफ लोगों का गुस्सा फूट पड़ा। गाली-गलौज और जनता के गुस्से का पारा गर्म हो गया। एक ओर बिकाऊ मीडिया ने जनता की समस्याओं से मुँह चुराया तो दूसरी ओर उसने एक सुर में सरकार के फैसले का आँख मूँदकर समर्थन किया। इसी बीच सुप्रीम कोर्ट ने इस फैसले को जनता के ऊपर सर्जिकल स्ट्राइक बताया।

अपनी जमीन से उखड़ा मध्यम वर्ग भी टीवी चैनलों और प्रिंट मीडिया के प्रचार से सरकार के प्रभाव में आ गया। मध्यम वर्ग ने कार्ड स्वैप करके खरीददारी की। उसे एटीएम के आगे लाइन लगाने की जरूरत नहीं पड़ी। इसके चलते मध्यम वर्ग ने सरकार का साथ दिया। इसका पुरस्कार देते हुए सरकार ने नौकरीपेशा मध्यम वर्ग के टैक्स में 5 फीसदी की कटौती भी कर दी। मीडिया, मध्यम वर्ग, पूँजीपति और भाजपा के कार्यकर्ता नोटबन्दी को बढ़िया कदम बताते रहे। सरकार के धुँआधार प्रचार के बावजूद सच्चाई इतनी भयानक थी कि उसे लोगों से छिपाना मुश्किल हो गया। प्रधानमन्त्री ने जनता से 50 दिन की मुहलत माँगी और अपने मोहक शब्दजाल में उन्होंने यह भी कह दिया कि अगर भ्रष्टाचार कम न हुआ तो उन्हें चौराहे पर जो चाहे सजा दीजिए, उन्हें मंजूर होगी। उन्होंने जूते से पीटने और पोल से लटकाने जैसी बातें भी कही।

हालाँकि सभी जानते थे कि 50 दिन बाद कुछ भी नहीं होने वाला था। 50 दिन जैसे-जैसे करीब आते गये, फोड़ा फूटकर मवाद बहने लगा। बैंक अधिकारी भ्रष्टाचार में लिप्त पाये गये जो अब तक भ्रष्टाचार से दूर थे। बैंकों के ऊँचे अधिकारियों ने अकूत कमाई की। भाजपा नेताओं के पास 2000 रुपये के गुलाबी नोटों के लाखों-करोड़ों जब्त होने का अन्तहीन सिलसिला चल पड़ा। हरियाणा में रोडवेज कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी। मामला यह था कि उनके अधिकारियों ने उन्हें 100-100 के नोट लाने का आदेश दिया था, जिसे वे 500 और 1000 के नोट से बदलने में इस्तेमाल कर रहे थे। जब रोडवेज कर्मचारी बस यात्रियों से 100 रुपये के लिए दबाव डालने लगते तो मारपीट की नौबत आ जाती। एक रोडवेज कर्मचारी की हार्ट अटैक से मौत हो गयी। दोनों ओर से पाटों में पिस रहे रोडवेज कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी। परेशान हाल जनता ने कई जगह बैंक और एटीएम पर पथराव किया। कश्मीर में आतंकवादियों के पास 2000 के नये नोट जब्त किये गये, इससे आतंकवाद पर लगाम कसने की बात खोखली साबित हो गयी। हालाँकि नोटबन्दी करके आतंकवाद पर रोक लगाने की बात कहकर प्रधानमन्त्री ने देश के सामने खुद स्वीकार कर लिया कि इस मामले में उनकी सुरक्षा व्यवस्था फेल हो गयी है। सेना के जरिये वे इसपर लगाम लगाने में नाकामयाब हो गये हैं।

नोटबन्दी का फायदा मिलने के बजाय उससे चौतरफा नुकसान उठाना पड़ा। क्या सरकार अपने मंसूबे में असफल हो गयी। दरअसल ऐसा नहीं है। हाथी के दाँत खाने के कुछ और होते हैं, दिखाने के कुछ और। 8 नवम्बर को सरकार ने नोटबन्दी के पीछे तीन कारण-- जाली नोट, आतंकवाद और काले धन पर कार्रवाई, गिनवाये थे, वे हाथी के दिखाने वाले दाँत थे। जबकि मंसूबा कुछ और ही था। वास्तव में तीन अन्य कारणों से सरकार ने नोटबन्दी का फैसला लिया

था, जिसमें वह पूरी तरह सफल रही। वे कारण हैं– पाँच राज्यों के चुनाव में विपक्षी पार्टियों की घेरेबन्दी, कैशलेस अर्थव्यवस्था से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को फायदा पहुँचाना और पूँजीपतियों के कर्ज को बट्टा खाते में डालना।

आज यह एक खुला रहस्य है कि सभी राजनीतिक पार्टियों के पास अथाह काला धन है। वे इस काले धन का इस्तेमाल कई तरह के गैर-कानूनी कामों में करती हैं। इनमें रैली में भीड़ जुटाने के लिए लोगों को 300-400 रुपये देना, चुनाव के समय शराब, मुर्गा और हथियार बाँटना, मीडिया कर्मियों को खरीदकर अपने पक्ष में हवा बनाना और पार्टी विरोधी लोगों का सफाया करने के लिए गुण्डे-बदमाशों के गिरोह पालना मुख्य है। प्रधानमन्त्री नोटबन्दी करके इसपर कड़ी चोट करना चाहते थे, लेकिन सिर्फ दूसरी पार्टियों पर। इसीलिए सरकार ने इसका भी पुख्ता इंतजाम कर लिया था कि भाजपा को इस कड़ी चोट से बचा लिया जाये। इस बात के ठोस सबूत जनता के सामने आ गये हैं। भाजपा नेता जनार्दन रेड्डी ने अपनी बेटी की शाही शादी की। इसमें उन्होंने 500 करोड़ रुपये खर्च किये। नोटबन्दी के समय ही भाजपा के वरिष्ठ नेता नितिन गडकारी की बेटी की शादी में 28 चार्टर्ड प्लेन उतारे गये और नागपुर में हुई इस शादी में 10 हजार मेहमान शामिल हुए। जनार्दन रेड्डी और नितिन गडकरी का सरकार बाल भी बाँका नहीं कर पायी। ठीक उसी समय जनता हजार-दो हजार के लिए सड़कों पर मारी-मारी फिर रही थी। कितने ही घरों से डोली नहीं उठी, कितनों के अरमानों का खून हुआ और कितनों ने अपनी जान गवाँ दी। सरकार अपने लोगों और पराये लोगों में खूब अन्तर समझती है।

ऑल इण्डिया मैन्यूफैक्चरर्स ऑर्गेनाइजेशन के एक अध्ययन के मुताबिक नोटबन्दी का सबसे अधिक असर अति लघु और लघु क्षेत्र की उत्पादन इकाइयों पर पड़ा। इस संस्था से 13 हजार उद्योग-धन्धे सीधे जुड़े हैं। इस क्षेत्र में 35 प्रतिशत नौकरियाँ खत्म हो गयीं। कुल मिलाकर 12 लाख से अधिक लोग बेरोजगार हुए। इसके बाद बुनियादी सेवा क्षेत्र के 3 से 4 लाख लोगों को नौकरी से निकाल दिया गया। मझोले उद्योग से 20 से 25 हजार लोग निकाले गये। हालाँकि मझोले उद्योग से निकाले गये लोगों की तादाद बाकी उद्योगों की तुलना में कम है क्योंकि मझोले उद्योग की इकाईयाँ अभी इस उम्मीद में लोगों की छँटनी नहीं कर रही हैं कि लम्बे समय में हालत सुधर जायेगी।

सूरत के कपड़ा उद्योग में 8 लाख से अधिक लोग काम करते हैं। नोटबन्दी के चलते इनके कारोबार पर गहरा असर पड़ा है। सूरत के पांडेसरा वीवर्स फेडरेशन के अध्यक्ष आशीष गुजराती ने बताया कि इस सीजन में पूरे भारत में 50 लाख शादियाँ थीं। नोटबन्दी के चलते इनमें से 90 फीसदी शादियों के खर्चे कम करने पड़े। शादी में कपड़े की भारी माँग होती है। नोटबन्दी से लगभग सभी ऑर्डर कैंसिल हो गये।

झारखण्ड में मनरेगा के तहत 26 लााख लोगों के जॉब कार्ड बनाये गये हैं, इनमें से 95 फीसदी को नोटबन्दी के चलते काम नहीं मिल पाया।

लोक लेखा समिति (पैक) ने आरबीआई के गर्वनर और वित्त मन्त्रालय व राजस्व मंत्रालय के अधिकारियों को 20 जनवरी तक पैक के सामने अपना जवाब दाखिल करने के लिए कहा था। 10 दिसम्बर 2016 के बाद से ही नोटबन्दी को लेकर आरबीआई ने कोई आँकड़ा जारी नहीं किया। पैक ने सवाल पूछा था कि बैंकों के पास कितने पैसे जमा हुए? कितने नये नोट वितरित किये गये? नोट को लेकर मौजूदा संकट कब तक बने रहने की आशंका है? नोटबन्दी के 50 दिन बाद अपने सम्बोधन में प्रधानमन्त्री भी इसका जवाब नहीं दे पाये थे। नोटबन्दी से क्या हासिल हुआ? पैक ने आरबीआई से यह भी सवाल पूछा कि किस कानून और रिजर्व बैंक के प्रावधानों के तहत लोगों पर अपनी ही नकदी निकालने पर रोक लगायी गयी? यह अधिकार आपको किसने दिया? अगर आप कोई नियम नहीं बता सकते तो क्यों न आप पर मुकदमा चलाया जाये और शक्तियों का दुरुपयोग करने के लिए आपको पद से हटा दिया जाये?

योजना आयोग के पूर्व उपाध्याय मोंटेक सिंह अहलूवालिया ने बताया कि नोटबन्दी से अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर एक से दो प्रतिशत तक गिर सकती है। इस हिसाब से चालू वित्त वर्ष में यह 5 से 5.5 प्रतिशत हो जायेगी। अर्थव्यवस्था में सुस्त रफ्तार की बात राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने भी स्वीकार की। जनवरी महीने के पहले गुरूवार को देशभर के राज्यपालों और केन्द्र शासित प्रदेशों के उपराज्यपालों को वीडियो कान्फ्रेंसिंग के माध्यम से सम्बोधित करते हुए कहा कि नोटबन्दी के चलते आर्थिक मन्दी जैसे हालात पैदा हो गये हैं। नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री पॉल-क्रुगमैन ने भी माना कि नोटबन्दी से लम्बे समय में भारतीय अर्थव्यवस्था को कोई लाभ नहीं मिलने वाला है।

कैशलेस अर्थव्यवस्था और पेटीएम को फायदा पहुँचाने का मामला भी सरकार के गले की फाँस बन गया। जनता में नोटबन्दी विरोधी लहर को महसूस करने के बाद सरकार ने अपना पैंतरा बदल लिया। वह नोटबन्दी को कैशलेस अर्थव्यवस्था की ओर कदम बताने लगी। 8 नवम्बर को नोटबन्दी की घोषणा करते समय प्रधानमन्त्री ने इस बारे में कोई बयान नहीं दिया था। इससे पहले नोटबन्दी की घोषणा के कुछ ही घंटों के भीतर पेटीएम कम्पनी के विज्ञापन में मोदी जी की फोटो छप चुकी थी। उनके ऊपर चीनी कम्पनी पेटीएम के साझीदार अलीबाबा को फायदा पहुँचाने का आरोप भी लगा। इसी दौरान उनपर सहारा और बिड़ला से 50 करोड़ घूस लेने का केस भी सुप्रीम कोर्ट में पहुँच गया। हालाँकि सुप्रीम कोर्ट ने सहारा और बिड़ला के प्रबन्धकों की निजी डायरी में लिखी बातों के आधार पर प्रधानमन्त्री के ऊपर मुकदमा चलाने से इंकार कर दिया। स्पष्ट है कि इस व्यवस्था में सत्ता की कुर्सी पर बैठे किसी व्यक्ति को न्याय के कठघरे में खड़ा करना आसान नहीं।

लगता है कि सरकार का खुद अपनी योजना से ही भरोसा उठ

गया था। 30 दिसम्बर तक 500 और 1000 के पुराने नोट बेकार हो जाने थे, जो कुल नोटों का 86 फीसदी थे। यानी लगभग 14,70,000 करोड़ रुपये। अगर कोई काला धन मुद्रा के रूप में बचाकर रखता तो वह रद्दी हो जाना था। मान लिया कि अगर काले धन का एक लाख करोड़ रुपये के पुराने नोट सरकार के पास नहीं पहुँचते तो सरकार उतने ही नये नोट छापकर खजाने में जमा करा सकती थी। इसके बदले में उसे कुछ वापस नहीं करना पड़ता। फिर क्यों सरकार 50-50 की स्कीम लेकर आयी। यानी अपना काला धन सरकार के पास जमा करो और 50 फीसदी सरकार को टैक्स के रूप में देकर बाकी वापस ले जाओ। कहाँ काले धन की कमाई करने वालों की सारी सम्पति जब्त होनी चाहिए थी और उन्हें जेल की सलाखों में डाला जाना चाहिए था और कहाँ 50-50 का सम्मानपूर्ण ऑफर।

आनन-फानन में स्वाइप मशीनों की माँग तेजी से बढ़ गयी। रिलायन्स, वालमार्ट आदि के मॉलों में खरीददारी के लिए मध्यम वर्ग की लाइनें लग गयी। इससे एक ओर मध्यम वर्ग ने उत्साहित होकर सरकार की तारीफ में कसीदे पढ़ना शुरू किये तो दूसरी ओर रिलायन्स ने भी घोषणा की कि कम्पनी अगले तीन साल में 300 नये कैश एण्ड कैरी स्टोर खोलेगी। वालमार्ट ने भी लम्बे समय के बाद आगरा में एक नया स्टोर खोल दिया और अगले तीन सालों में 50 नये स्टोर खोलने की तैयारी में जुट गयी है।

एसबीसी ग्लोबल रिसर्च के अनुसार नोटबन्दी से पैदा हुई दिक्कतें स्थायी रहेंगी। उसने तीसरी और चौथी तिमाही की अनुमानित वृद्धि दर घटाकर 5.5 प्रतिशत कर दिया है। कोटक इंस्टीटयूशनल इक्वीटीज ने भी वृद्धि दर में गिरावट का संकेत दिया है।

ग्रामीण इलाकों में अधिक प्रभाव पड़ने की सम्भावना है। भारत गाँवों का देश है। यहाँ 60 प्रतिशत से अधिक लोग गाँवों में रहते हैं। नोटेबन्दी से सब्जी किसानों की कमर टूट गयी। नोट की कमी के चलते ठेले-खोमचे पर सब्जी बेचने वालों का धन्धा चौपट हो गया। इससे शहरों में सब्जी की माँग गिर गयी और कीमतें भी टूट गयी। सब्जी किसानों को भरी नुकसान हुआ। नोट की कमी के चलते समय से खेतों की जुताई नहीं हो पायी। रबी की फसल का रकबा घट गया। इस बार किसानों को धान कौड़ियों के मोल बेचना पड़ा। इससे धान उगाने वाले किसान बर्बाद हो गये। वे बैंकों और सूदखोरों के कर्जे के नीचे दब गये। किसान आत्महत्याओं की संख्या में भी तेज वृद्धि हुई है।

सभी क्षेत्रों में कारोबार मन्दा होने के चलते ट्रांसपोर्ट का धन्धा भी ठहराव का शिकार हो गया। सड़कों पर खड़े ट्रकों की लम्बी कतारें लग गयीं। महिलाओं ने अपने घर वालों से छिपाकर भविष्य के लिए जो थोड़े-बहुत रुपये बचा कर रखे थे, उससे भी हाथ धोना पड़ा। कई जगहों पर इसी मुद्दे को लेकर पति-पत्नी में मारपीट की भी नौबत आ गयी। पारिवारिक ताने-बाने को छिन्न-भिन्न करनेवाली इन घटनाओं पर बेदिल शासकों की निगाह नहीं जाती। इन समस्याओं के बारे में सरकार का दावा था कि ये तात्कालिक समस्याएँ हैं, लम्बे समय में हालात ठीक हो जायेंगे। इस बात पर संसद में पूर्व प्रधानमंत्री ने कहा कि हमें बस इतना पता है कि लम्बे समय में सभी मर जायेंगे। उन्होंने नोटबन्दी को सरकार की संगठित लूट बताया।

वर्गीय समाज में कोई भी नीति देश के सभी लोगों को समान रूप से प्रभावित नहीं करती। किसी भी सरकारी नीति का अलग-अलग पायदान पर खड़े वर्गों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ना लाजमी है। नोटबन्दी ने भी जहाँ एक ओर मेहनतकश जनता को रुलाया तो दूसरी ओर पूँजीपतियों की पाँचों ऊँगलियाँ घी में डूब गयीं। वे खुशी से फूले न समाये। उन्हें सबसे बड़ा फायदा दो रूपों में मिलता दिखाई दिया। पहला, बैकों से देश के जिन 63 बड़े पूँजीपतियों ने लाखों करोड़ रुपये कर्ज लिया था और वे कर्ज वापस नहीं कर रहे थे, जिससे लगभग सभी बैंक दिवालियेपन के कगार पर पहुँच गये थे। नोटबन्दी से बैंकों में अकूत धन जमा हुआ जिससे तात्कालिक तौर पर बैंकों की बर्बादी टल गयी और सरकार ने इन हरामखोरों के कर्जों को बट्टा खाते में डाल दिया। आजादी के बाद से आज तक बट्टा खाते में डाला गया केवल 11 फीसदी कर्ज ही वसूला जा सका है। इसे देखते हुए सरकार का यह कदम पूँजीपतियों के लिए कर्जमाफी से कम नहीं है। यह सब नोटबन्दी की कतार में लगे लोगों की लाश पर किया गया। नोटबन्दी से कुछ महीने पहले प्रशासन को फटकार लगाते हुए उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि बैंककर्मी 50 हजार रुपये का कर्ज वसूलने के लिए किसानों को प्रताड़ित करते हैं, लेकिन पूँजीपतियों के करोड़ों के कर्जों पर कोई कार्रवाई नहीं करते। अमीरों के ऊपर कोई भी कानून लागू नहीं हो पाता। यह ऐसा ही देश है। नोटबन्दी ने एक बार फिर इस सच्चाई पर मुहर लगा दी।

दूसरा, छोटे दुकानदारों की परेशानी बढ़ गयी। नकदी में कमी के चलते उनकी बिक्री में भारी गिरावट हुई। इसी दौरान शॉपिंग मॉल और खुदरा की बड़ी दुकानों में बिक्री बढ़ गयी। क्योंकि वहाँ पहले से ही स्वाइप मशीनें काम कर रही थीं। जब छोटे दुकानदार और कारोबारी बर्बाद हो जायेंगे, तो जाहिर है कि बड़े पूँजीपति उनका धंधा हथिया लेंगे। वालमार्ट और रिलायंस छोटे दुकानदारों को बाजार से बेदखल करने की हैसियत रखते हैं। वहीं छोटे कारखानेदारों और कारोबारियों के उजड़ने के चलते बड़े पूँजीपति उनका बाजार हथिया लेंगे। नोटबन्दी ने पूँजीवादी व्यवस्था के अन्दर छोटे कारखानेदारों के उजड़ने की स्वाभाविक गति को तेज कर दिया है। यही हाल गरीब और मध्यम किसानों का है। इन किसानों के लिए पहले ही खेती घाटे का सौदा थी, नोटबन्दी ने उनके ऊपर दोहरी मार की है। इनकी तुलना में नोटबन्दी की मार से धनी किसान बच निकले। रसूखदार धनी किसानों ने बैंको से मिलीभगत करके खुद के लिए नये नोटों का पुख्ता इंतजाम कर लिया था। ऐसे ही लोग यह भी कहते पाये गये कि नोटबन्दी से हमें कोई नुकसान नहीं है। मोदी जी का फैसला बिल्कुल ठीक है।

यह बात पल्ले नहीं पड़ती कि सरकार ने 94 प्रतिशत

कालेधन को छोड़कर 6 प्रतिशत काले धन पर कार्रवाई के लिए नोटबन्दी क्यों की है? दरअसल भाजपा सरकार 1 अप्रैल 2017 से जीएसटी लागू करने जा रही है, वाइब्रेंट गुजरात सम्मलेन में वित्तमंत्री ने जीएसटी, कैशलेस अर्थव्यवस्था और नोटबन्दी के बीच सम्बन्धों के बारे में बात की। अगर सरकार कैशलेस अर्थव्यवस्था बनाने में पूरी तरह सफल भी नहीं होती तो भी नोटबन्दी के बाद तबाह होने से बच गये छोटे-बड़े सभी दुकानदारों के मन में यह खौफ भर देगी कि स्वाइप मशीन के बिना व्यापार जोखिम भरा है, तो दुकानदार और कारोबारी स्वाइप मशीन से कैशलेस व्यापार शुरु कर देंगे। इसके बाद सरकार आसानी से केन्द्रीय नियंत्रण के जरिये जीएसटी लागू करने में सफल हो जायेगी। वह टैक्स की दर भी मनमाने तरीके से तय करेगी। उसकी योजना है कि शुरू में 10 प्रतिशत टैक्स लिया जाये लेकिन ऐसी सम्भावना है कि जल्द ही वह इसे बढ़ाकर 28 प्रतिशत कर देगी। छोटे दुकानदार अपने व्यापार में शायद ही तिहाई लाभांश कमा पाते हों। ऐसी हालत में 28 प्रतिशत टैक्स से उनकी कमर टूट जायेगी।

18 नवम्बर को पूर्व वित्तमन्त्री पी चिदम्बरम ने कहा कि सबूत दिखाते हैं कि सरकार का यह फैसला ठीक नहीं था जो खराब तरीके से लागू हुआ हो जैसा कि कुछ लोग इसे बताने की कोशिश कर रहे हैं, बल्कि यह सरकार का गलत फैसला था जिसे गलत तरीके से लागू किया गया। वर्गीय नजरिया रखने वाला इंसान पी चिदम्बरम की बात से सहमत नहीं हो सकता। अगर यह पूरी तरह गलत फैसला था तो पूँजीपति वर्ग, मीडिया और मध्यम वर्ग का ऊपरी तबका सरकार के इस फैसले के साथ क्यों खड़ा था? सच बात तो यह है कि इन लोगों को ध्यान में रखकर ही सरकार ने यह फैसला लिया था और इन लोगों का इससे बहुत फायदा हुआ है।

सामीर अमीन ने अपनी पुस्तक 'उदारवादी वायरस' में लिखा है कि दुनिया की आधी आबादी यानी लगभग 350 करोड़ लोग अर्थव्यवस्था के हाशिये पर फेंक दिये गये हैं। वे न तो उत्पादक गतिविधियों में हिस्सा लेते हैं और न ही उनकी क्रयशक्ति इतनी है कि वे बाजार का हिस्सा बनकर माँग को बढ़ा सकें। पूँजीवादी अर्थशास्त्री और सरकारें उन्हें फालतू आबादी मानती हैं और उनसे छुटकारा पाना चाहती हैं। सोचिए यह कितनी विध्वंशक बात है! आप दुनिया की आधी जनता को खत्म करने की बात सोचते है? उच्च वर्ग को कोई परवाह नहीं कि देश के मजदूर और किसान खत्म होते जा रहे हैं। वे इसे फालतू आबादी मानकर इनसे छुटकारा पाना चाहते हैं। भारत में बेहद कंगाली में जिन्दगी गुजारनेवाले लोग आधी आबादी से अधिक हैं। पूँजीपति वर्ग के उद्योगों के लिए मजदूरों की लम्बी कतारें लगीं हुई हैं बल्कि वे उद्योगों से मजदूरों की छँटनी कर रहे हैं। ऐसे में उन्हें मेहनतकश जनता की फिक्र करने की क्या जरूरत है। नोटबन्दी के साथ-साथ सरकार और व्यवस्था का हर कदम जनता की तकलीफें बढ़ाने वाला है और उसे मौत की ओर धकेलने वाला। भाजपा सहित तमाम राजनीतिक पार्टियों की सोच केवल इतनी है कि यही आबादी उसे चुनावों में वोट देकर विजयी बनाती है। वे उसे नाराज नहीं करना चाहते। हालाँकि नोटबन्दी से भाजपा को जनता की जबरदस्त नाराजगी झेलनी पड़ी लेकिन वह सोचती है कि मीडिया के जरिये जनता को गुमराह करके बाजी मार लेगी। इस तरह वह अपने मंसूबे में कामयाब हो जायेगी।

भारत के सत्ता पक्ष, विपक्ष और दुनिया भर के तमाम बुर्जुआ अर्थशास्त्री इस मुद्दे पर एक-दूसरे से मतभेद रखते हैं। उनके मतभेद का लब्बोलुआब यह है कि जनता की दुख-तकलीफों से उनका कोई सरोकार नहीं है। उनका मतभेद इस बात को लेकर है कि नोटबन्दी से अर्थव्यवस्था पर कितना घातक प्रभाव पड़ेगा? पूँजीपति वर्ग के मुनाफे में कितनी कमी होगी? **अमर्त्य सेन, मोंटेक सिंह अहलूवालिया, मनमोहन सिंह और पॉल क्रुगमैन मानते हैं कि दूरगामी तौर पर इससे अर्थव्यवस्था की रफ्तार सुस्त पड़ जायेगी। वे नोटबन्दी को अर्थव्यवस्था के लिए उतना ही बड़ा खतरा मान रहे हैं जितना बड़ा खतरा तब पैदा हो जाता है, जब किसी इंसान के शरीर से खून निकालने के बाद उसी रफतार से नया खून वापस न चढ़ाया जाये। वे खून चढ़ाने में लापरवाही को लेकर डॉक्टर की आलोचना करते हैं। लेकिन वे डॉक्टर को इसलिए नहीं लताड़ते कि खून निकालने की जरूरत ही नहीं थी, फिर भी उसने खून क्यों निकाल लिया।** सरकार के पक्षधर अर्थशास्त्रियों का मानना है कि नोटबन्दी ब्लड कैंसर से पीड़ित इंसान के शरीर से गन्दा खून निकालने जैसा था। लेकिन सच्चाई यह है कि केवल 6 प्रतिशत काला धन ही नकदी के रूप में था, जिसके लिए इतनी तबाही मचायी गयी। बाकी के 94 प्रतिशत काले धन पर सरकार चुप क्यों है?

सरकार ने 'कैशलेस अर्थव्यवस्था' का एक बेहद मनमोहक नारा उछाला है। इसे पूँजीपति वर्ग ने हाथो-हाथ लपक लिया। नोटबन्दी से सीधे-सीधे मोबाइल एप्प और सॉफटवेयर कम्पनियों को फायदा पहुँचाया गया। ई-मार्केटिंग कम्पनी अमेजन की बिक्री अचानक कई गुना बढ़ गयी। सीधी सी बात है कि अमेजन, स्नैपडील और फिलपकार्ट को बढ़ावा देना छोटे दुकानदारों के हितों पर सीधा हमला है। यह कोई मुक्त प्रतियोगिता नहीं है, बल्कि सरकार ने छोटे दुकानदारों पर नोटबन्दी का जो बेरहम चाबुक चलाया है, दुकानदारों की दुर्दशा उसी का नतीजा है।

गाँवों में अधिकांश जनता के पास बैंक खाते नहीं है। नोटेबन्दी के चलते उन्हें अथाह मुश्किलों का सामना करना पड़ा। गाँवों में बैंक दूर-दूर हैं और पहाड़ी गाँवों में तो बैंक इतनी दूर होते है कि आने-जाने में पूरा दिन लग जाता है। गाँव की अर्धशिक्षित और अशिक्षित जनता को बैंकों का कई बार चक्कर काटना बहुत बड़ी परेशानी का सबब बन गया। भारत की लगभग आधी जनता अशिक्षित या अर्धशिक्षित है। इसके लिए कैशलेस अर्थव्यवस्था की बात बेहूदा मजाक से कम नहीं है।

कोई भी चुनावी पार्टी जनता के साथ खड़ी नहीं है। सभी

पार्टियाँ जनता को भ्रमित करके उनकी सस्ती सहानुभूति हासिल करना चाहती हैं। आज सभी पार्टियों ने उदारीकरण और वैश्वीकरण की आर्थिक नीतियों के आगे समर्पण कर दिया है। ये विश्व बैंक, अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और अमरीका की नीतियों को बढ़-चढ़ कर लागू करती हैं। इसीलिए इन पार्टियों की आर्थिक नीतियों में कोई अन्तर नहीं है। इन्होंने अपने देश की जनता का दामन छोड़कर बेशर्मी से विदेशी पूँजी का दामन थाम लिया है। एक साल पहले अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने दुनिया भर की सरकारों को कैशलेस अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ने का निर्देश दिया था, जिससे वालमार्ट जैसी दिग्गज खुदरा और अमेजन जैसी ई-मार्केटिंग कम्पनियों के लिए बाजार तैयार किया जा सके। यह बाजार तभी तैयार हो सकता था, जब छोटे दुकानदारों को बाजार से बाहर ढकेल दिया जाता। झूठ-फरेब करके सरकार ने अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की इसी नीति को लागू किया है। वेनेजुएला की सरकार ने जब नोटबन्दी लागू की तो जनता के जबरदस्त विरोध के चलते उसने कदम वापस ले लिया। लेकिन भारत में देशी-विदेशी कम्पनियों की लूट जारी है। इस मुद्दे पर पक्ष-विपक्ष की सभी पार्टियों ने चुप्पी साध रखी है। विपक्ष की पार्टियाँ संसद और सड़कों पर विरोध का दिखावा करती हैं। वे जनता को कभी जन पक्षधर मुद्दों पर गोलबन्द नहीं करतीं। नोटबन्दी के मामले में विपक्षी पार्टियों की सरकार के साथ घिनौनी समझौतेबाजी के चलते ही जनता अधिक गुमराह रही। दरअसल चुनावी राजनीति में विपक्ष जैसी चीज खत्म हो गयी है। सभी पार्टियाँ व्यवस्था की पोषक हैं। वे आपस में मिलकर जनता को लूटती हैं। वामपंथी पार्टियाँ भी संसदवाद के कीचड़ में धँस गयी हैं और व्यवस्था की पार्टी बन चुकी हैं। वे भी जनसंघर्षों में भागीदारी नहीं करतीं। उनके पास भी जनता को देने के लिए कुछ नहीं है।

कुछ लोग ऐसा मान रहे हैं कि सरकार ने नोटबन्दी का फैसला लागू करने से पहले पर्याप्त तैयारी नहीं की, इसीलिए जनता को आर्थिक परेशानी उठानी पड़ी। दरअसल सरकार ने यह फैसला अपनी पूरी समझदारी के साथ लागू किया था, जितनी समझदारी उसके पास थी। राजनीतिक पार्टियों के अपने बुद्धिजीवी होते हैं जो पूँजीपति वर्ग के स्वार्थों के अनुरूप नीतियाँ बनाते हैं। ये जनता से पूरी तरह से कटे होते हैं, इसीलिए जनता के ऊपर सरकारी नीतियाँ बड़ी बेरहमी से थोपते हैं।

नोटेबन्दी से विपक्ष की पार्टियाँ सचमुच बौखला गयी थीं, दूसरी ओर सत्ता पक्ष की पार्टियों में कोई खलबली नहीं हुई। हालाँकि भाजपा भी भ्रष्टाचार मुक्त पार्टी नहीं है। यदुरप्पा, वसुंधरा राजे, रमन सिंह, शिवराज सिंह चौहान, अरुण जेटली और अन्य भाजपा नेताओं पर भ्रष्टाचार के आरोप लग चुके हैं, लेकिन नोटेबन्दी से उन्हें डर नहीं लगा। वे आश्वस्त थे कि उनका कालधन सुरक्षित है। लेकिन विपक्षी पार्टियाँ सकते में आ गयी थीं। उन्हें लगा कि कहीं मोदी सचमुच उनपर हमला न कर दे। इसके चलते उन्होंने सरकार पर दबाव बनाना शुरू किया। घेराव, आन्दोलन, और प्रदर्शन की रणनीति कामयाब हुई। सरकार ने विपक्षी नेताओं से बैठक करके उन्हें भरोसा दिया कि किसी भी राजनीतिक पार्टी के आर्थिक स्रोत पर कोई कार्रवाई नहीं होगी।

भारत के असंगठित क्षेत्र में श्रम-शक्ति का कुल 93 फीसदी लगा हुआ है। खेत मजदूर, ठेका मजदूर, हथकरघे आदि का कारोबार करने वाले लोग असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं। 80-90 प्रतिशत कर्मचारियों को कैश में भुगतान किया जाता है। नोटबन्दी के चलते इस क्षेत्र के अधिकांश मजदूर बेरोजगार हो गये। इन्होंने लाखों की संख्या में महानगरों को छोड़कर उलटा गाँवों की ओर पलायन किया। पुराने नोट बदलवाने के लिए भी मजदूरों को दिन-दिन भर लाइन में लगे रहना पड़ा। ऐसी स्थिति में उनके काम-धन्धे टूट गये।

पूरे देश में कोयला खदान की कई इकाइयाँ बन्दी के कगार पर हैं। 70 प्रतिशत मजदूरों की छँटनी कर दी गयी है। अपने गाँव लौटे मजदूरों की भारी संख्या के चलते दिसम्बर में मनरेगा के तहत नौकरी माँगने वालों की संख्या 60 प्रतिशत बढ़ गयी। पूरे देश में दिसम्बर में लगभग 840 लाख लोग मनरेगा के तहत नौकरी माँग रहे थे।

सितम्बर 2016 तक भारतीय बैंकिंग व्यवस्था दिवालिया होने के कगार पर पहुँच गयी थी। पूँजीपतियों ने बैंकों का कर्ज लौटना बन्द कर दिया। कुल मिलकर 6 से 7.5 लाख करोड़ पूँजीपतियों पर बकाया था। नोटेबन्दी के चलते बैंकों में बड़ी संख्या में नकदी जमा हो गयी। जिसे लोग नये नोटों के रूप में एक साथ निकाल नहीं सकते हैं क्योंकि इसपर सरकार ने रोक लगा दी है। नकदी जमा होने के चलते बैंकों का कर्ज संकट तात्कालिक तौर पर हल हो गया।

केवल 6 प्रतिशत कालाधन मुद्रा के रूप में है। इसे हासिल करने के लिए सरकार ने नोटबन्दी लागू नहीं की है। उसका असली मकसद देश की अर्थव्यवस्था को कैशलेस बनाना था। लेकिन वह इसे घोषित तौर पर लागू करने से डरती थी।

इस तरह नोटेबन्दी के चलते सरकार की तीनों मंशा पूरी होती नजर आ रही हैं। चाहे वह 2017 में पाँच राज्यों के चुनाव में विपक्षी पार्टियों को पटखनी देने का मामला हो या पूँजीपतियों की कर्जमाफी और कैशलेस अर्थव्यवस्था बनाने का मामला हो। हालाँकि नोटेबन्दी के चलते भाजपा सरकार को भी कम मुश्किलें झेलनी नहीं पड़ रही हैं। पार्टी के सांसदों, विधायकों और नेताओं को जनता के जबर्दस्त विरोध का सामना करना पड़ रहा है। उन्हें दौड़ा-दौड़ा कर पीटा जा रहा है और रस्सी से बाँधा जा रहा है। लेकिन यह देश की व्यापक जनता की अथाह पीड़ा के आगे कुछ भी नहीं जिससे बैंक में रुपये होते हुए भी अपने लोगों को हमेशा के लिए खो देना पड़ा। आजादी के बाद से आनेवाली सरकारों ने जनता के ऊपर एक से बढ़कर एक कुठाराघात किया, लेकिन इस सरकार ने जितनी कुटिलता के साथ कुचाल चली है, उसका उदाहरण इतिहास में दुर्लभ है।

भाजपा सरकार का चौथा बजट

-

--मुकेश कुमार

1 फरवरी को वित्त मंत्री अरुण जेटली ने बीजेपी सरकार का चौथा बजट पेश किया। इसके एक दिन पहले आर्थिक सर्वे प्रस्तुत किया गया। यह बजट नोटबन्दी के बाद की परिस्थिति में पेश किया गया। नोटबन्दी की वजह से देश के अधिकांश मेहनतकश लोगों ने भारी परेशानी झेली थी, उद्योग जगत और अन्य कारोबारों में सुस्ती से बड़ी तादाद में मजदूर बेरोजगार हुए, छोटे काम-धंधों में लगे गरीब लोग तबाह हुए और पहले ही 2 साल सूखा झेल चुके किसान अपनी नयी फसल को औने-पौने दामों पर बेचने को मजबूर हुए। सरकार के अनुसार काला धन, फर्जी नोट और आतंकवाद को मिटाने के लिए नोटबन्दी की गयी थी। इस दौरान हुई भारी तकलीफ के बारे में प्रधानमंत्री मोदी ने जनता से कहा था कि अगर वह देश हित के लिए इस परेशानी को सहन करने का त्याग करे तो देश की बहुत सी समस्याएँ हल हो जायेंगी, अर्थव्यवस्था को बहुत दूरगामी लाभ होगा और बाद का जीवन सुखद होगा। ऐसी भी खबरें आयी थीं कि मोदी समर्थक जनता को समझा रहे थे कि नोटबन्दी से अमीरों का जो काला धन जब्त होगा, उससे मोदी जी उनके जनधन खातों में अच्छी-खासी रकम जमा करा देंगे। इसके साथ ही मध्य वर्ग को भी मीडिया द्वारा टैक्स में भारी छूट मिलने के सब्ज बाग दिखाये जा रहे थे। इसलिए इस बजट से बहुत सारे लोग बड़ा फायदा होने की जबरदस्त उम्मीद लगाये हुए थे।

लेकिन 31 जनवरी को बजट से पहले प्रस्तुत किये जाने वाले आर्थिक सर्वे में बताया गया कि नोटबन्दी के असर से अर्थव्यवस्था में गिरावट आयी है, कारोबार बन्द हुए हैं, श्रमिक बेरोजगार हुए हैं, किसान और खेत मजदूरों की आमदनी कम हुई है और इसका ऐसा असर अभी अगले साल भी जारी रहेगा तथा इसका फायदा मिलने में अभी और ज्यादा वक्त लगेगा। आर्थिक सर्वे में सरकार ने एक नयी बात यह भी बतायी कि नोटबन्दी का कालाधन, फर्जी नोट, आतंकवाद और कैशलेस अर्थव्यवस्था से भी ज्यादा बड़ा मकसद तो मकानों/जमीनों की कीमतें कम करना था। असल में मोदी जी तो सब गरीबों को सस्ता घर दिलाना चाहते थे और नोटबन्दी के असर से ये कीमतें गिरने लगी हैं। पर हमें ज्यादा खुश होने से पहले पूरी बात समझनी चाहिए। आगे कहा गया है कि अभी कुछ समय तक मकानों की कीमतें गिरेंगी लेकिन जीएसटी लागू होने के बाद फिर से बढ़ने लगेंगी।

सर्वे में यह भी बताया गया कि मोदी सरकार की नीतियों से अर्थव्यवस्था में बड़ी तेजी आयी है लेकिन बैंकों के डूबे कर्ज इस साल बढ़कर पिछले साल से दोगुने हो गये हैं। सरकारी बैंकों में तो ये बढ़कर कुल दिए गये कर्ज का 12 प्रतिशत हो गये हैं। वैसे यह पूरी संख्या नहीं है, क्योंकि वसूल नहीं हुए कर्ज में से जिसको बैंक बट्टे खाते में डाल देता है, उसे इसमें नहीं जोडा जाता। पहले प्रचार किया जाता था कि बैंकों के कर्ज दबाने का काम गरीबी मिटाने के नाम पर चल रही योजनाओं में लोन लेने वाले छोटे किसान या अन्य छोटे-मोटे काम करने वाले गरीब लोग करते हैं। लेकिन इस सर्वे में जानकारी दी गयी कि ना चुकाये कर्ज में से 71 प्रतिशत हिस्सा सिर्फ 50 बड़ी कम्पनियों द्वारा दबाया गया है, जिन्होंने औसतन प्रति कम्पनी 20 हजार करोड़ रुपये दबा लिया है। इनमें से भी सबसे बड़ी 10 कम्पनियों ने तो प्रति कम्पनी 40 हजार करोड़ रुपये दबा लिये हैं।

लेकिन 20 या 40 हजार करोड़ रुपये कर्ज दबा लेना इस व्यवस्था में कलंक और बदनामी का नहीं, बड़ी मेहनत का काम समझा जाता है। इसलिए इन्हीं लोगों को आज की व्यवस्था में 'उद्यमी' कहा जाता है, क्योंकि लूट-खसोट ही इस लुटेरी पूँजीवादी व्यवस्था का असली उद्यम है! और दिन-रात बेकार का काम करने वाले गरीब मेहनतकश तो होते ही हैं काहिल, मुफ्तखोर, मुँह जोहनेवाले-- तभी तो भूखे मरते हैं! अब पूँजीवादी व्यवस्था के 'इंसाफ' का तकाजा है कि इन महान 'उद्यमियों' को इस संकट से निकलने में में मदद की जाये, और भी ज्यादा कर्ज देकर। पर बैंकों के पास तो इन्हें और कर्ज देने के लिए अब पूँजी ही नहीं बची तो क्या किया जाये। सर्वे में इसका भी उपाय सुझाया गया है। रिजर्व बैंक के पास 4 लाख करोड़ रु की फालतू पूँजी है, उससे लेकर इसे सरकारी बैंकों को दे दिया जाये, ताकि वे इन 'उद्यमियों' को और बड़े कर्जे दबा लेने का मौका देकर पुरस्कृत कर सकें! जब तक ऐसा नहीं हो पा रहा है, तब तक के लिए सरकार बजट से 70 हजार करोड़ देगी, जिसमें से 25 हजार करोड़ रुपये इस वर्ष में पहले ही दिये जा चुके हैं। अगले दिन बजट में वित्त मंत्री ने यह बात तुरन्त ही मानते हुए इन बैंकों को 10 हजार करोड़ रुपये की पूँजी दे भी दी।

आर्थिक सर्वे में और एक जानकारी भी दी गयी कि हर साल औसतन 90 लाख लोग रोजी-रोटी कमाने के लिए अपने घर-बार

से उजड़कर प्रवासी बन जाते हैं और यह संख्या सालाना 4.5 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। यह भी बताया गया कि इनमें महिलाओं की तादाद भी जोरों से बढ़ रही है, क्योंकि वस्त्र, इलेक्ट्रॉनिक्स जैसे कई उद्योग इन्हें खास तौर पर भर्ती करना चाहते हैं; इसी तरह घरेलू काम के लिए भी बड़ी संख्या में देश के कम विकसित इलाक़ों से बड़ी संख्या में महिलाओं को भर्ती किया जाता है। लेकिन क्या इससे इनका जीवन वास्तव में सुधर रहा है? असल में देखें तो इनमें से ज्यादातर लुधियाना, तिरुपुर, मुम्बई, दिल्ली, बंगलूर जैसे शहरों की गंदी, बीमारियों भरी झोंपड़पट्टियों में समा जाते हैं, जहाँ ये देश की पूरी आर्थिक वृद्धि और पूँजीपति मालिकों की बढ़ती सम्पन्नता का पूरा बोझ अपने कंधों पर उठाते हैं। यहाँ ये अक्सर हमें नजर भी नहीं आते क्योंकि इनकी बस्तियाँ बहुमंजिला इमारतों और चमकते मालों के पीछे छिपी रहती हैं और भारी तादाद में लोग बहुत कम जगह में, दड़बों में मुर्गियों की तरह भरे रहते हैं। 'मायानगरी' मुम्बई की 2 तिहाई जनसंख्या शहर की सिर्फ 8 प्रतिशत जगह में रहती है। यहाँ हर धर्म, जाति, इलाक़े, भाषा, आदि के लोग एक ही दुर्गम हालत में भरे होते हैं, सब अपने श्रम के मूल्य की लूट के शिकार हैं।

इस आर्थिक सर्वे के बाद 1 फरवरी को वित्त मंत्री ने जो बजट पेश किया उससे भारी उम्मीदें लगाये आम गरीब मेहनतकश लोगों को तो कुछ हासिल नहीं हुआ -- ना उनके रोजगार के लिए किसी व्यवस्था की बात हुई, ना जनधन खातों में कुछ मिला और ना ही औने-पौने दामों पर फसल बेचने को मजबूर गरीब किसानों के लिए किसी राहत की बात हुई। लेकिन शेयर बाजार को बजट बहुत पसंद आया है, देशी-विदेशी वित्तीय पूँजी और कॉरपोरेट्स भी खुश हैं, बजट की तारीफ के पुल बाँधे जा रहे हैं, बड़े सरमायेदार टीवी-अखबारों में इसे 10 में से 10 नम्बर देने लायक बजट बता रहे हैं। इन लोगों को खुश होना भी चाहिए। किसी को टैक्स में छूट मिली है, किसी को इंफ्रास्ट्रक्चर के नाम पर सस्ती जमीन मिल गयी है, और खेती के नाम पर एग्रो प्रोसेसिंग उद्योगों को सस्ते कर्ज मिल गये हैं। देश के विकास के लिए एयरपोर्ट बनाने के लिए किसानों से सस्ते दामों पर ली गयी जमीनों में से हवाई अड्डे चलाने वाली कम्पनियों को 50 हजार एकड़ जमीन दुकानें, होटल, आदि बनाने के लिए मिल गयी है।

मध्यवर्ग के मोदी भक्तों को भी 5 सौ से एक हजार रुपये महीने का आयकर छूट का टुकड़ा फेंक दिया गया है। सम्पत्ति में दीर्घावधि पूँजीगत लाभ का फायदा भी अब 3 साल के बजाय 2 साल में ही मिलेगा, इससे भी इन्हें कुछ टैक्स बचाने का मौका मिलेगा। नोटबन्दी से थोड़ा घायल और मोदी जी से थोड़ा असंतुष्ट चल रहे छोटे-मंझोले कॉर्पोरेट तबके के बड़े हिस्से -- 96 प्रतिशत कम्पनियों -- को भी टैक्स में 5 प्रतिशत की छूट मिल गयी लेकिन इन्होंने नोटबन्दी के बाद जिन मजदूरों की छँटनी की थी उनका क्या? उन्हें कुछ राहत नहीं है। बड़े कॉर्पोरेट तो खुद सरकारी आँकड़ों के अनुसार पहले ही 30 प्रतिशत की दर होते हुए भी 21 प्रतिशत टैक्स ही देते हैं, वह भी जितनी आमदनी दिखाते हैं उस पर, जो झूठे खाते बनाकर छिपा ली जाती है, उसका तो कोई हिसाब ही नहीं।

विदेशी वित्तीय पूँजी मालिक भी खुश हैं। संस्थागत निवेशकों को अप्रत्यक्ष करों से छूट का वादा मिला है तो बैंकिंग क्षेत्र को उनके डूबे कर्जों के नाम पर सजा के बजाय इनाम यानी टैक्स में छूट मिल गयी है। मोदी जी ने पूँजीगत लाभ पर टैक्स लगाने का जिक्र कुछ दिन पहले किया था, पर मालिकों की घुड़की के सामने वह भी धरा रह गया; फिर भी जेटली जी शिकायत करते रहे कि बहुत कम लोग टैक्स देते हैं। 2014 में मोदी जी ने 6 करोड़ सस्ते घर बनाने का वादा किया था, इस बार वह घटकर 1 करोड़ पर आ गया (बने कितने किसी को पता नहीं!) पर इसके नाम पर नोटबन्दी के बाद से सरकार से असंतुष्ट बिल्डर तबके को आयकर में छूट और सस्ते कर्ज का इंतजाम भी हो गया है।

जहाँ तक सियासी पार्टियों को व्यक्तिगत नकद चन्दे की सीमा 20 से 2 हजार कर राजनीतिक भ्रष्टाचार कम करने का शोर है तो इससे थोड़े अकाउंटेंट ही ज्यादा लगेंगे, ज्यादा रसीदें और वाउचर बनाने के लिए। फिर जितना पैसा असल में चुनाव और रैलियों में खर्च किया जाता है उसका दसवां हिस्सा भी खातों में दिखाया जाता हो इसमें शक है। अडानी जी के हेलीकॉप्टर में जब मोदी जी (या और कोई जी!) उड़ान भरते हैं तो क्या उसका कोई बाउचर बनता है? हाँ, इस शोर के पीछे बगैर घोषणा के ही राजनीतिक दलों को विदेशी चन्दा लेने की छूट भी फाइनेंस बिल में घुसा दी गयी है।

पर पिछले कई साल से नौकरियों की कमी, घटती आमदनी और बढ़ती महँगाई झेल रहे मजदूर, छोटे-मध्यम किसानों, गाँवों से उजड़कर शहरों में छोटे-मोटे धंधे करने वालों को क्या मिला? एक झुनझुना तक भी नहीं! हाँ, श्रम कानूनों में बदलाव से, मालिकों द्वारा आसानी से निकाल बाहर करने की तलवार गर्दन पर तनी रहती जरूर है! इसी तरह छोटे-मध्यम किसानों की कब्रगाह तैयार करने के लिए ठेका खेती शुरू करने का भी ऐलान किया गया है, जिसके जरिये मेहनतकश किसान को कॉर्पोरेट गुलामी में बाँध दिया जायेगा।

इस सबके बाद यह स्वाभाविक ही है कि टीवी चौनलों पर 'अर्थ विशेषज्ञ' इस बात पर भारी प्रसन्नता जतायें कि मोदी-जेटली जोड़ी ने नोटबन्दी के बाद जनता के कष्टों से पसीजकर उन्हें राहत देने के लिए खजाने का मुँह नहीं खोला, वित्तीय अनुशासन बनाये रखा है और अपनी मुट्ठी बिल्कुल बन्द रखी है! मतलब मजदूर-किसानों को खुश करने के लिए फालतू पैसा खर्च नहीं किया, बस जबानी जमा-खर्च से ही काम चला दिया। उनकी इस बहादुरी और मालिक तबके से वफादारी पर 'बाजार' अर्थात सरमायेदार तबका खास तौर पर फिदा हो गया है!

नोटबन्दी के बाद अर्थव्यवस्था का गहराता संकट

-- वी श्रीधर

धीरे-धीरे सामने आ रही जानकारियों से साफ हो रहा है कि नोटबन्दी की कार्रवाई बेहद उटपटाँग और गैरजिम्मेदाराना ढँग से की गयी थी। यह साफ है कि अभी तो केवल तबाही के स्तर से पर्दा उठ रहा है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा की गयी नोटबन्दी या देश की सबसे बड़ी आर्थिक तबाही शुरू होने के दो महीने बाद लाखों भारतीयों को यदि इससे कोई फायदा हुआ है तो वे उस फायदे के सामने आने का इन्तजार कर रहे हैं। इसी बीच, हालाँकि धीमी गति से नगदी की कमी पूरी हो रही है, फिर भी विभिन्न स्रोत इशारा कर रहे हैं कि अर्थव्यवस्था खतरनाक ढँग से गहरे संकट में धंसती जा रही है।

तथ्यों से साफ है कि अर्थव्यवस्था बूरी तरह तबाह हुई है और इससे मोदी सरकार की साख काफी गिरी है। तबाही लाने वाली इस कार्रवाई से भारतीय रिर्जव बैंक जैसी संस्थाओं की साख और केन्द्रीय मंत्री मण्डल की साझी जिम्मेदारी तय करने जैसे लोकतांत्रिक आचरण के प्रमुख सिद्धान्तों पर कई बार चोट पहुँची है। अब यह दिखायी देने लगा है कि सरकार इस कार्रवाई से हुई तबाही को रोकने की तैयारी कर रही है। मोदी ने नये साल पर राष्ट्र के नाम पर अपने सम्बोधन में एक संकेत दिया है जिसमें उन्होंने अर्थव्यवस्था को रसातल से निकालने के उपायों की घोषणा की है। इनमें से बहुत से उपाय प्रतिकात्मक लगते हैं और वित्तमंत्री अरुण जेटली के बजट में, जो जल्द ही पेश होना है, यह भाव खुलकर समने आ सकता है।

इसी दौरान चौंका देने वाली सूचना मिली कि नोटबन्दी का फैसला लेने में मोदी सरकार ने देश के केन्द्रीय बैंक को दरकिनार कर दिया था। ऐसी सूचनाएँ धीरे-धीरे आयी, क्योंकि केन्द्रीय बैंक और वित्तमंत्री खुलकर सामने नहीं आ रहे थे। ये जानकारियाँ सूचना के अधिकार के तहत और संसदीय कमेटी द्वारा पूछे गये सवालों के जवाब के जरिये सामने आयी। पता चला कि 7 नवम्बर को मोदी सरकार ने रिर्जव बैंक को 500 और 1000 रुपये के नोटों को वापस लेने की सलाह दी थी।

मोदी ने 8 नवम्बर को टीवी पर राष्ट्र के नाम सम्बोधन में नोटबन्दी की घोषणा कर दी। इसलिये केन्द्रीय बैंक को फैसला लेने के लिए वास्तव में एक ही दिन का समय दिया गया। इसका धोषित मकसद जाली मुद्रा को खत्म करना, आतंकवाद की वित्तीय मदद को बन्द करना और काले धन पर हमला करना था। 8 नवम्बर के बाद से ही जैसे-जैसे मोदी सरकार लगातार अपने मकसद को बदलती गयी उसी तरह देश को ''नकदी विहीन समाज'' की ओर ले जाना एक अतिरिक्त मकसद बनता गया। रिर्जव बैंक को कार्रवाई की तैयारी के लिए केवल एक दिन का समय दिया गया और अपने बोर्ड की एक फौरी बैठक बुलाने के लिए मजबूर किया गया। बोर्ड 8 नवम्बर की दोपहर को मिला और रिर्जव बैंक के केवल तीन स्वतंत्र निदेशक बैठक में आ पाये। हालाँकि सरकार के अपने नामित सदस्य पूरी संख्या में आये थे, ऐसे में कोई भी समझदारी भरा विचार-विमर्श करना सम्भव नहीं था।

ये खुलासे कई केन्द्रीय मंत्रियों द्वारा किये गये इस दावे को झूठा साबित करते हैं कि रिर्जव बैंक ने फैसले को मंजूरी दी थी। इसके उलट नोटबन्दी के प्रस्ताव की गम्भीरता पर विचार करने या इस फैसले के चलते पूरी तरह परिचालन से बाहर होने जा रहे 86 फीसदी नोटों के मूल्य के बराबर नये नोट छापने की चुनौती को पूरा करने के रास्ते तलाशने का लिये समय भी नहीं दिया गया। ये खुलासे यह साफ-साफ दिखाते हैं कि अकेले मोदी ने एक निरंकुश राजनीतिक और आर्थिक संस्था की तरह नोटबन्दी के फैसले को अन्जाम दिया। दूसरे शब्दों में कहें तो अब उपलब्ध सबूत दिखाते हैं कि न तो केन्द्रीय बैंक और न ही किसी राजनीतिक संस्था ने इसकी अनुमति दी। यहाँ तक कि नोटबन्दी के अधिकारिक रूप से घोषित उद्देश्यों को हासिल करने के दूसरे सम्भव विकल्पों पर भी विचार नहीं किया गया।

एक अपारदर्शी शासन तंत्र

30 दिसम्बर को, जब पुरानी रकम जमा करने के लिए दिया गया समय समाप्त हो गया, उसके दो सप्ताह बाद भी देश इस जानकारी का इन्तजार कर रहा है कि कितनी रकम जमा हुई। रिर्जव बैंक कह चुका है कि बैंकों में आये धन की गिनती अभी चल रही है। हालाँकि पहले जारी किये गये रिर्जव बैंक के खुद के आंकड़ों में भारी मात्रा में, कम से कम 97 फीसदी 500 और 1000 रुपये के पुराने नोट जमा हो जाने की सम्भावना जतायी गयी थी। विडम्बना यह है कि जब ये आंकड़े सफल अभियान का संकेत दे रहे हैं, तो यह उस सरकार के लिए शर्मनाक बन गया है जो इस दुस्साहसिक कार्रवाई को काले धन के खिलाफ युद्ध कह चुकी है। रिर्जव बैंक

और वित्तमंत्री लगातार मूर्ख बनाने वाले ऐसे तर्क दे रहे हैं जैसे बैंकों में वापस आये नोटों की सटीक संख्या जानने के लिये 'दोहरी गिनती' की समस्या का समाधान करने की जरूरत है जिन पर कोई विश्वास नहीं कर सकता। बल्कि आश्चर्य है कि एक आधुनिक राष्ट्र, जिसे अपनी सूचना तकनीक पर गर्व है, नोटों की गिनती दो-तीन हफ्तों में भी नहीं कर सकता। संस्थाओं को अपने ही आँकड़े छिपाने की छूट देकर, जो आम तौर पर होता ही रहता है, सरकार अमिट शंकाओं से उत्पन्न इस अटकलबाजी को दबा सकती है, कि नोट गिनती में अनुचित देरी का असली मकसद सत्ता को आकडों में हेरा-फेरी की छूट देना है।

इसी दौरान जब रिर्जव बैंक और वित्तमंत्रलाय ने यह आंकड़ा देने से स्पष्ट इनकार कर दिया कि भारी मात्रा में अचानक नोटों की वापसी से पैदा हुआ खालीपन कितना बड़ा था, यह खालीपन भरता जायेगा। सोचने वाली बात है कि केन्द्रीय बैंक ने दो महीनों से ज्यादा समय के दौरान एक बार भी नागरिकों को इस बारे में सूचित करने का प्रयास नहीं किया कि भारतीय नगदी क्षेत्र में नोटबन्दी से पैदा हुए खालीपन को कैसे और कितनी रफ्तार से भरा जा रहा है।

हालाँकि रिर्जव बैंक बुलेटिन के जनवरी अंक में, जो हाल ही में प्रकाशित हुआ है, खालीपन को भरने के कुछ विचार पेश किये गये हैं। इसमें में प्रकाशित आकडों से पता चलता है कि 30 दिसम्बर 2016 (पुराने नोट जमा करने का अन्तिम दिन) तक अर्थव्यवस्था में परिचालित नगदी की कीमत 9.14 लाख करोड़ रुपये थी। हालाँकि इस बुलेटिन में नोटबन्दी के अलग-अलग आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, फिर भी यह दिखाता है कि मार्च 2016 में परिचालित नकदी के मुकाबले आज परिचालित नकदी की कीमत आधी से थोड़ी ही ज्यादा है। 8 नवम्बर के बाद से ही तथ्य सार्वजनिक नहीं किये गये हैं। लेकिन यह स्पष्ट है कि नये 2000 रुपये के नोटों का मौजूदा नोटों की कीमत में भारी हिस्सा है। इसका अर्थ है कि भारत का नगदी संकट जल्द ही खत्म होने जा रहा है। 2000 रुपये का नोट मुद्रा आपूर्ति को बनाये रखने के लिये जरूरी था। इससे अर्थव्यवस्था को ध्वस्त होने से बचाने के लिए मुद्रा की जरूरी मात्रा की छपाई तेजी से सम्भव हो सकी।

8 नवम्बर के बाद हुई अन्य घोषणाओं ने भारतीय मुद्रा प्रणाली के भविष्य की अनिश्चितता को और ज्यादा बढ़ा दिया। पहली घोषणा मोदी द्वारा नोटबन्दी की घोषणा के बाद जेटली द्वारा दी गयी यह संदिग्ध दलील थी कि चलन से बाहर कर दी गयी मुद्रा के बराबर मुद्रा छापने कि जरूरत नहीं है, क्योंकि नकदीविहीन भविष्य की ओर बढ़ाये जा रहे भारतीयों की दुविधा को खत्म करने के लिए मुद्रा की कमी की जरूरत होगी। यह दलील किसी विश्वसनीय आंकडे, आर्थिक तर्क या यहाँ तक कि किसी साधारण आम धारणा पर भी आधारित नहीं थी। दूसरी दलील जो मोदी सरकार के सेवकों द्वारा दी गयी थी, वह यह कि 2000 के नोट को केवल "खालीपन को रोकने वाले" कि भूमिका निभानी है और आने वाले समय में यह खुद ही चलन से बाहर हो जाएगा।

नोटबन्दी से पूरे देश में सभी तरह के उद्योग और पेशों को हुए नुकसान के चलते भरी पैमाने पर जीविकाएँ उजड़ी, जिसके चलते बहुत ज्यादा आलोचना के घेरे में फंसी मोदी सरकार साफ तौर पर तबाही को कम दिखाने की मुद्रा में आ गयी। मोदी के 31 दिसम्बर के भाषण से, जो नोटबन्दी के अन्त पर केन्द्रित था, यह साफ हो गया है कि इस दिशा में और प्रयास किये जायेंगे। इन तरीकों में एक तरीका है कि जाहिरा तौर पर नोटबन्दी से बैंकों में रकम भर दी जाएगी, जिसके चलते ब्याज दरों को कम करना सम्भव हो जाएगा। इस तरह के प्रयास से दो समस्याएँ पैदा होंगी। पहली, सभी जानते हैं कि अब बैंकों के पास फालतू जमा है, क्योंकि दो में से एक डाट यानी निकासी पर इसका नियन्त्रण है, जो दरअसल दो महीनो से ज्यादा समय से बन्द है। दूसरी डाट, जिससे नकदी जमा होती है, खुली रखी गयी है। यह स्पष्ट है कि सरकार द्वारा दी गयी एक असाधारण व्यवस्था ही ऐसी स्थिति को संचालित रख सकती है और यह भी अनन्तकाल तक नहीं चल सकती। दूसरा, ब्याज दरों में मामूली गिरावट कोई जश्न मनाने कि चीज नहीं है। ऐसा नहीं है कि उद्योगों का बड़ा हिस्सा या वे जो दूसरे धंधों में लगें हैं इसलिए निवेश नहीं कर रहे हैं कि उन्हे ब्याज दरों के नीचे जाने का इंतजार है। इसके बजाय उजड़ती जीविका, बन्द फैक्ट्रियाँ और घर लौटते प्रवासी मजदूर एक महासंकट की ओर इशारा करते हैं। सबसे ज्यादा भयावह यह है कि वे भविष्य के गर्भ में छिपे चरम अंधकार कि ओर इशारा कर रहे हैं। यह उम्मीद कि ब्याज दरों में मामूली और साथ ही साथ अस्थाई कमी निवेश को प्रेरित करेगी, केवल आशाहीन कल्पना के आगे (मोदी सरकार में राजनीतिक निंदकों) आत्मसमर्पण करना नहीं है , बल्कि यह भी एक जुमला ही है।

रिजर्व बैंक बुलेटिन के इसी अंक में (पेज 35) पहले 2015-16 की इसी अवधि की तुलना में सभी तरह के उद्योगों को दिये गये कर्ज में कमी का दमदार तथ्य पेश किया गया है। रिजर्व बैंक द्वारा दर्ज 30 से ज्यादा औद्योगिक श्रेणियों में केवल चाय और सड़क परियोजनायें इसका अपवाद हैं। पिछले साल की तुलना में 2016-17 में इसी दौरान (25 नवम्बर तक) बैंकों द्वारा उद्योगों को दिये गये कुल कर्ज में 5.5 प्रतिशत की कमी की गयी। इससे सबसे ज्यादा प्रभावित खाद्य प्रसंस्करण उद्योग हैं जिनमें इस साल लगभग 16 फीसदी की गिरावट आयी है। वस्त्र उद्योग में लगभग 10 फीसदी, पेट्रोलियम और कोयला में लगभग 5 फीसदी, रसायन उद्योगों में 9 फीसदी, अभियांत्रिकी मालों में 5 फीसदी ,

जवाहरात और गहनों में 7 फीसदी से अधिक और विनिर्माण में लगभग 7 फीसदी की गिरावट आयी है।

डिजिटल भुगतान और लालच

हाल ही में कुछ निजी बैंक पेट्रोलियम डीलरों से मर्चेन्ट डिस्काउंट रेट (एमडीआर) वसूलने लगे, यह ग्राहकों से वसूले जाने वाले भार से अलग था। यह दिखाता है कि कैसे लालच डिजिटल की ओर जाने का प्रमुख प्रेरक है। डीलरों ने (एमडीआर) थोपे जाने का विरोध किया और पूरे देश में पेट्रोल पम्प बन्द करने की धमकी दी। पेट्रोलियम मंत्रालय के हस्तक्षेप ने अभी के लिए तो इस संकट को टाल दिया, लेकिन यह मुद्दा हमें पूरी तरह याद दिलाता है कि कैसे मोदी सरकार ने घोड़े के आगे बग्गी जोड़ी है। ऐसे लेन- देन के लिए कोई ऐसी व्यवस्था कायम करने के बजाय, जो लेन-देन की शर्तों को तय करें, डिजिटल सेवा प्रदाताओं द्वारा की जाने वाली गड़बड़ियों पर दंडात्मक कार्रवाई करे और एक मजबूत नेटवर्क बनाये जो लेन-देन में निश्चितता की गारंटी करे; सरकार ने एक अधकचरे देश को अराजकता की भट्टी में झोंक दिया।

नोटबन्दी के आलोचक, अमर्त्य सेन ने कहा कि रिजर्व बैंक द्वारा कोई निर्णय नहीं लिया जाता है। रिजर्व बैंक के दो पूर्व गवर्नरों विमल जालान और वाई.वी. रेड्डी, जो कठिन आर्थिक चुनौतियों के समय केन्द्रीय बैंक के प्रबन्धक थे , उन्होने ने भी नोटबन्दी कि आलोचना की है। जालान ने इंगित किया है कि बेहद तेजी से शुरू की गयी नोटबन्दी की योजना को गुप्त बनये रखने का गम्भीर तर्क युक्ति संगत था। उन्होने तर्क दिया है कि काला धन धारकों को पहले से ही सूचित कर दिये जाने से वही स्थिति बनती जैसी 8 नवम्बर के बाद हुई, एक भीड़ चलन से बाहर हुए नोटों को बैंकों में जमा करने के लिये दौड़ पड़ी। व्यवस्था की वास्तविक परीक्षा तो अब है कि वो किसी भी कीमत पर काला धन रखने वालों को पकड़े और दंडित करें और जाँच करें कि उन्होने काला धन कैसे जमा किया। वाई.वी. रेड्डी ने अपने हमले को 'साख जोखिम' पर केन्द्रित रखा, क्योंकि केन्द्रीय सरकार ने रिजर्व बैंक की पहचान को तबाही की कगार पर पहुँचा दिया है।

नोटबन्दी के फौरी असर निकट भविष्य में निश्चित रूप में दो मुख्य क्षेत्रों में महसूस किये जायेंगे। हालाँकि सालाना बजट की कवायद जाहिरा तौर पर एक आर्थिक प्रतिष्ठान है, इसकी बहुत ज्यादा सम्भावना है कि इसके अगले संस्कारण पर प्रधानमंत्री का बहुत गहरा असर पड़ेगा। निश्चित रूप से इस साल की प्रस्तुति पर प्रतिकात्मक असर होगा। मोदी ने हठपूर्वक देश का समर्थन पाने का प्रयास किया है जो कि इस विचार द्वारा टूट चुका है और उससे यह भी साबित हुआ कि सरकार की स्थिति हास्यास्पद और उससे भी बदतर है। उद्योगों तथा उच्च और उच्च-मध्यम वर्ग के धनी लोगों के लिये पर्याप्त मात्रा में कर छूट की सम्भावना है। 'लोकप्रियता' में मोदी की नये सिरे से विश्वास बहाली स्पष्ट रूप से उन राज्यों के मतदाताओं को बाँधे रखने की राजनीतिक जरूरत है, मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश और पंजाब में, जहाँ नोटबन्दी की तबाही के बाद पहली बार उसकी लोकप्रियता मतदाताओं द्वारा जाँची जायेगी।

(साभार : फ्रन्टलाइन)

राजस्थानी जनगीत

कोड़ा जमालशाही ...

-शिवराम

कोड़ा जमालशाही, पीछे देखा मार खाई
आँखों पे पट्टी बाँध, चलता ही चल भाई
घाणी के बैल जैसा, घूम चारों ओर भाई

उपजाओ अन्न खूब, घुटने तोड़ो रोज खूब
लोहू का पसीना कर, माटी में रम जाओ खूब
जब भी रह भूखा, तो मुँह से न बोल भाई
कोड़ा जमालशाही ....

बीमारी की क्या फिक्र, मरने का क्या गम
गाँव में अस्पताल ना हो तो क्या गम
दवाइयाँ बेकार हैं, जोत भैरू जी की बोल भाई
कोड़ा जमालशाही ....

तन के न कपड़े देख, मन की न पीड़ा देख
चैन खुशहाली तेरी, टेलीविजन पे देख
कर्तव्यों में सार है, अधिकार न माँग भाई
कोड़ा जमालशाही...

आजादी भरपूर है, जीम रहे सारे लोग
व्यंजन छत्तीस हैं, हाजिर है छप्पन भोग
तेरे घर न्योता नहीं, मेरा क्या खोट भाई
कोड़ा जमालशाही ...

वे महलों में रहें, ये बात मत बोल
वे क्या क्या करें, ये पोल मत खोल
चुप रह, चुप रह, इनके राज में बोल है अमोल भाई
कोड़ा जमालशाही...

अनुवाद-दिनेशराय द्विवेदी

नोटबन्दी : क्या कहते हैं लोग-बाग

--अमरपाल

बड़े-बड़े अर्थशास्त्रियों और बुद्धिजीवियों ने नोटबन्दी के पक्ष-विपक्ष में ढेर सारी बातें कही हैं। टीवी चैनलों पर गर्मा-गर्म बहसें भी हुई हैं। सोशल मीडिया पर नोटबन्दी की मार से बेहाल लोगों के बारे में कुछ छिट-पुट बातें भी आयी हैं। लेकिन गाँवों में रहने वाले मेहनतकश लोगों के मन की बात सुनने वाला कोई नहीं है। इसी सिलसिले में हमने बागपत जिले के दूर देहात में रहने वाले लोगों से नोटबन्दी के बारे में बातचीत की। उनमें से कुछ लोगों की राय यहाँ दी जा रही है।

गाँव दहा के मोहम्मद यूसुफ और उनके छोटे भाई अय्यूब पेशे से बढ़ई हैं। यूसुफ ने बताया कि हमारे साथ कई लोग काम करते हैं जिसमें 7 लोग दिल्ली में ठेका लेकर काम करते हैं और 4 लोग गाँव में। नोटबन्दी के बारे में पूछने पर उन्होंने बताया, ''फायदा तो कुछ भी नी हुया, हाँ नुकसान अर परेशानी खूब हुई।'' यूसुफ के छोटे भाई ने कहा कि ''25 हजार रुपे तै बी ज्यादा का नुकसान हुया, इस नोटबन्दी ते।... 6 कारीगर थे मेरे पास दिल्ली में, अर सातवाँ में। एक कारीगर की 500 रुपे की दिहाड़ी हो। पूरे महीने कारीगरों कू घर बिठाके अपनी जेब त ही मजदूरी देनी पड़ी, शुकर खुदा का, के वे कहने-सुनने के बाद 250 रुपये दिहाड़ी प मान गे। नहीं तो 50 हजार ते भी ज्यादा का नुकसान होता। हार थक का एक महीने बाद काम ही बन्द करना पड़ा अर रहना पड़ा दिल्ली। दिल्ली वाला काम तो अब तक ठप्प ही पड़ा। हाँ, यहाँ गाम में एक काम आया। पहले म्हारे पास काम एण्डवांस में रह था।...''

''पहले रोज 3500 रुपे का काम हो जा था। अर आज हम सारे मिल क 1000 रुपे भी कमां ना पारे भाई, यू नुकसान ही तो है?''

यूसुफ ने बताया कि 13 नवम्बर को उसके ताऊ के लड़के की शादी थी। ''पहले तो बैंको की लेन में लग क 4 बैंकों में पैसा जमा करा, फेर अपने रुपे कढ़वाने की खातिर फेर ते लेन में लगे। उसमें भी कधी 2000 रुपे मिल जा थे, अर कधी नम्बर आने लो खत्म हो जा थे। घर के सारे आदमी बस लेन में ही लगे रहे। म्हारा छोटा भाई अय्यूब तो शादी में आ भी नी पाया। शादी का ज्यादातर इंतजाम इधर-उधर से किया, अर कुछ उधार किया, तब शादी हो पायी।'' बीच में टोककर अय्यूब ने कहा कि ''शादी में ही नी जी, मैं तो उसके बाद भी घर नी आ पाया। मैं पूरे 3 महीने 12 दिन बाद 16 जनवरी को आ पाया। क्योंकि काम बन्द हो गया था। पुराने नोट नी चल पा रहे थे और नये थे नी। मालिक के पास भी नहीं थे। जब नये पैसे मिले तब घर आ पाया।''

''मैंने 10-10 हजार के 5 चैक भिजवाये थे जी शादी की लिया, पर वे भी नी भुने। वापिस करने पड़े, मालिक कू एक परेशानी और भी आयी। पुराने नोट चाहे वो 500 का हो या 1000 का, उनके खुल्ले नी मिलै, पूरे के पूरे पैसों का सामान ही लेना पड़ै था या फेर 100-200 रुपये कम मिलै थे।

और कोई बात आप बताना चाहते हैं?

नसीम, जिनका लड़का कपड़ों की फेरी लगाता है, उन्होंने बताया कि ''शादी के सीजन में बढ़िया दो पैसे कमा ले था, जिबतै नोटबन्दी हुयी, घर बैठा। मझै कह, अक मेरा कहीं और काम लगवा दे, यू फेरी वाला काम तो कतई नी चलरा। बता, मैं कहाँ तै उसका काम लगवा दूँ। नोटबन्दी न तो हाल बेहाल कर दिये म्हारे।'' फिर युसुफ ने बताया कि ''भाईजान इसते तो हम पहले ही खुश थे, जो म्हारे पास पैसा नहीं भी हो था तो अपने यारों-पियारों से तो उधार मिल जा थे। काम तो नी रुकै था। इस नोटबन्दी ने तो हमें अपने पैसों की लिया रुला दिया।''

जब हमने पूछा कि आपको सरकार से क्या उम्मीद है? तो कई लोगों ने कहा कि ''लगै था, या सरकार महंगाई कू कम कर सकै..., पर इब तो भरोसा नी।'' नसीम का आटा चक्की और सरसों के तेल का स्पैलर है। नसीम ने कहा कि नोटबन्दी का प्रभाव तो इतना ज्यादा है और लोगों में इतनी तंगी है कि ग्राहकों से ''पिसाई के पीसे भी नी मिल पारे, बताओ 10-20 रुपये में क्या हो।''

''पहले, रोज 20-22 हाड़े (गेंहू के कट्टे) पिसने की लिया आवे थे। इब तो 100-150 रुपये का काम मुश्किल से आवे है। बिजली का दस हजार का बिल हो रा, वो भी जमा नी हुया।'' बातचीत के दौरान ही एक पुलिस वाला आया और कुछ पैसे नसीम को दिये।

हमने पूछा ये पैसे कैसे हैं?

नसीम ने बताया कि ''31 तारीख कू 1800 रुपे का चून (आटा) लिया था इन्ने। आज महीने पीछै 1000 रुपे दे गया। 800 इभी भी उधार हैं। जिब इनकी भी तंगी चलरी, तो म्हारा अर किसानो का के होगा।''

अपने घर-खर्च के बारे में नसीम ने बताया कि ''हम चार लोग हैं। 7000 रूपे महीने में हर हाल में चाह। इसमें हरज-मरज, कहीं आना-जाना या शादी-ब्याह का खर्चा नी है।''

150 रुपये रोज की आमदनी से तो

महीने के 4500 रुपये ही बैठते हैं। फिर घर का गुजारा कैसे चल रहा है। तो नसीम ने बताया कि ''भाई गुजारा चल ही कहाँ रहा, जो गुजारा चलता तो बिजली का बिल ना भर देता। तेरे-मेरे प त ले के काम चलाना पड़े। प्रधानमंत्री जी ने कहा था 50 दिन में सब ठीक हो जागा, पर इब तो 80 दिन होगे? मैं 2000 रुपये लेण बैंक गया था। दोपहर दो बजे तक नम्बर आया, जिब लोक पैसे खत्म होगे। जो पहले पहुँच जा, उसे तो मिल जाँ, पर सबकू आज लो भी नी मिलरे।''

अपको क्या लगता है, ये नोटबन्दी वाली स्थिति कब तक ठीक हो सकती है?

''भाई साहब हमें तो पता नी, कद ठीक होगी। या बात तो सरकार ही बता सके। हम तो आपकू इतना बता सकें, अक इसते सभी लोग परेशान हैं। मजदूर परेशान हैं, किसान परेशान हैं। अर भाई म्हारी जसी ये छोटी-छोटी दुकान या काम भी जभी चल सकें जिब किसानों, मजदूरों की हालत ठीक होगी। हम तो इनके ऊपर ही हैं।''

दाहा बाजार में हम गुलजार से मिले। इनकी खराद मशीन है। गुलजार ने बताया कि नोटबन्दी से पहले रोजाना 300-400 रुपये तक का काम आता था। पर नोटबन्दी के बाद तो एकदम खाली हैं। ''3 महीने ते दुकान का किराया नी दिया गया, बिजली का बिल भी नू ही पड़ा। बच्चों के स्कूल की फीस भी नी गयी। पहले बच्चों कि लिया कधी-कधी एक-आध केले की फली चली जा थी, पर ईब कुछ नी, बच्चे भी यू कहण लगे, हमें तो भूखा मार दिया। रोना आवे, हम के करें, बहोत परेशान हैं इस नोटबन्दी ते।

भाई जी, हाँगा लगे के 200 रुपये का काम नी होता, बस 150 पर जोर होले। अर उसमें भी आधे पैसे उधार हों।''

पैंचर लगाने वाले रफीक ने बताया कि उसका इलाज मेरठ में चल रहा था। नोटबन्दी के चलते उसे इलाज बन्द करना पड़ा। लड़की की शादी तय थी, मुजफ्फर नगर, काम ठप होने के चलते लड़की की शादी टूट गयी। लड़के वाले शादी अभी चाह रहे थे, पर रफीक पैसों का इंतजाम नहीं कर पाया। अनिल जी, रफीक की दुकान के मालिक हैं, और पशु का व्यापार करते हैं। उन्होंने बताया कि पिछले साल इस सीजन में 50-60 हजार रुपये का काम हुआ था। लेकिन अब कोई काम नहीं हैं। ''दुकान्न का किराया भी नी आ रहा। मैं भी यहीं रहूँ, जब इनके पास काम ही नी है तो मुझे किराया कहाँ से देंगे।'' इसी बीच एक ताऊ जी आये और पूछा कि क्या मामला है? यह पूछने पर हमने बताया, नोटबन्दी का किसानों, मजदूरों पर क्या असर पड़ा, उस पर बात चल रही है। ताऊ जी ने बताया ''मैं किसान हूँ, 5-7 बीघे का, मेरा नाम ऋषि है। मेरे दो लड़के, थारे जसे, एक पुलिस में, दूसरा फौज में। वैसे भाई मेरे हिसाब ते नोटबन्दी ते तो कोई परेशानी आयी नी, किसी कू, सब यहीं हैं, सबके काम चलरे।'' इस पर वहीं खड़े एक दूसरे ताऊ जी ने तुरन्त जबाब दिया ''भाई थोडे नी, 80 फीसदी बर्बाद हुये, अर भाई दिक्कत है खूब।'' पूछने पर उन्होंने अपना नाम चरण सिंह बताया। ''मेरी उमर 60 साल है। मैं डबल एमए हूँ, मेरी हार्डवेयर की दुकान है। भाई हम अपने बिल दिखाकर प्रूफ कर सकें।''

ऋषि जी की ओर मुखातिब होते हुए, उन्होंने बताया कि ''नोटबन्दी स पहले मेरी 5-6 हजार रूपे रोज की दुकानदारी थी। नोटबन्दी त बाद में 1000 रुपे की भी दुकानदारी नी है। ग्राहक प जो उधारी थी, वो आ नहीं रही, म्हारे प जो बाजार की देनदारी है, वो हम दे नहीं पा रहे। जब दुकानदारी कम होगी तो आमदनी भी कम होगी, खर्चों में कटौती करनी पड़ेगी। इस कटौती त परिवार की जरूरत पूरी नी हो रही है। घर में कलह होण लगी। मोदी जी ने हमें बहुत अच्छे दिन दिखा दिये। अरे भाई दिन में ही तारे दिखा दिये।"

उन्होंने बताया कि मेरे लड़के की 25 नवम्बर की शादी थी। ''मैं एक-एक पीसे कू तरस गया। सरकार ने कहा कि ढाई लाख रुपए मिलेंगे, शादी में।'' पर सारी औपचारिकता पूरी करने और गाँव के प्रधान को भी साथ लेकर बैंक जाने पर भी कुल 24 हजार रुपए मिले, ''वो भी लड़-भिड़के, कोट-कचहरी तक की बात होने के बाद। जिब मैनेजर त पूछा कि सरकार तो ढाई लाख कह री, तो वो बोला हमारे पास ऐसा कोई आदेश नही है, ना कैश है, जो कह रा, उसी से ही ले लो यहाँ तो 24 हजार ही मिल सकें।''

इन बातों को ऋषि जी भी सुन रहे थे। ये बातें सुनकर वे बोले कि ''हाँ भाई, शादी-ब्याह वालों को तो बहुत दिक्कत आयी।''

मुस्तकीम वेल्डर का काम करते हैं। पहले वे 10-11 हजार रुपये महीने में कमा लेते थे। उन पर कोई कर्ज नहीं था। लेकिन पिछले तीन महीने से उनका दुकान का किराया और बिजली बिल बाकी है। उनका कहना था कि ''म्हारे पास काम किसानों से ज्यादा है। पर जिब किसानो प ही पैसा नी, तो वे म्हारे लोक कैसे आवें, अर वे नी आते तो काम कहाँ ते आवे। सच्ची बात या है भाई जी, नोटबन्दी के बाद इव लोक एक जोड़ी लोहे के दरवाजे बनाये। भाई जी, धन्धा तो पिट ग्या बस। दिन काटरे किसी ढाल।

आमदनी खत्म होने से पड़े असर के बारे में उनका कहना था कि

आमदनी नी तो खर्चों की कटौती करनी पड़ री। एक रोजी छोड़के, इब हमने कहीं भी आना-जाना बन्द कर दिया। पहले दूध 1 किलो ले थे, इब ढाई सौ ग्राम लें, सब्जी बहोत मुश्किल से एक टेम बने, वा भी वही जो सबते मंदी हो, हमने नोटबन्दी के बाद परिवार में किमी का भी कपड़ा नी सिमाया(बनवाया), न जूते-चप्पल लिए, पूरी सर्दी जाने वाली है, सोड(रजाई) भी नी भरवा पाये, सारी सोड टूटरी। ऊपर-नीचे खेस अर चादर जोड़ के सोवें। और तो और, तीन बच्चे स्कूल में पढ़े थे, दो की पढ़ाई छुड़वानी पड़ी। इसी नोटबन्दी तै। बस के बतावें कूकर जीरे हम।''

सब्जी की खेती करने वाले किसान सतेन्द्र ने बताया कि ''मैं 3 बीघे जमीन उगाही(किराये) पर ले रक्खी। 9 हजार रुपे

बीघे प। मैं इसमें गोभी लगा रक्खी थी। नोटबन्दी त पहले डेड़ बीघे की गोभी का बहुत बढ़िया दाम मिला।''

''नोटबन्दी तै बाद में मेरी गोभी किसी ने 4-5 रूपये किलो में भी नी बूझी। मझे इसमें घणा नुकसान रहा, सिर्फ 4 से 5 हजार रुपये मिले, बस जान नू बचगी, डेड़ बीघे नोटबन्दी त पहले बिक गी थी। जिनकी गोभी नोटबन्दी के बाद आयी, वे तो कतई धरती में लग गे, अर जिनकी सारी फसल नोटबन्दी तै पहले बजार में चली गयी, उनके मजे आगे। मुझे पूरा आध्दम सूध का नुकसान हुआ।''

बागपत जिले के बड़ौत कस्बे में एक मजदूर पुलिया है, यहाँ चारो तरफ गाँवों के मजदूर आकर खड़े होते हैं ताकि उन्हें कोई मजदूरी पर ले जा सके। यहाँ पर हमने कुछ मजदूरों से बातचीत की। इनमें राजमिस्त्री, बेलदार और हर तरह की दिहाड़ी करने वाले मजदूर थे।

राजमिस्त्री ओमप्रकाश, गाँव-लोयन, ने गुस्से में कहा "नोटबन्दी न हमें पीस दिया, म्हारे हाथ में भीख का कटोरा दे दिया। हम एक-एक दिन की मजदूरी की लिया तरस रे भाई, नहीं तो इस टेम लोक दोपहरे के 12 बजरे, हम इस पुलिया पे के करते? भाई इस आस में बैठ्ठे, अक कहीं ते सौ-पचास का काम आजागा, तो आज की दाल-रोटी का जुगाड़ हो जागा।''

ओमप्रकाश ने बताया कि उधार और ब्याज पर पैसे लेकर पिछले 3 महीने से किसी तरह काम चल रहा है। हमारे यह कहने पर कि कुछ लोगों का मानना है कि कोई परेशानी नहीं है।

ओमप्रकाश गुस्से में बोले "हम एक-एक पीसे कू तरस रे। हम झूठ बोल रे? यू म्हारा परमानेंट ठिया है, डंके की चोट पै कहरा मैं, चाहे म्हारे गून्ठे दस्तक करवालो, जहाँ कहोगे वहीं चल के कह देंगे, चाहे हमें मोदी फांसी पे चढ़ा दे।"

इस पर पाल्लेराम (राजमिस्त्री) बोले ''अर भाई, इब के म्हारे फाँसी ना आहरी भुक्खे तो मर ही रहे हम, बीमारी ते भी मरण लगरे।" भाई एक दिक्कत है के? घर में बीमारी की दिक्कत, आणे-जाणे की दिक्कत, रिश्तेदारों का पता बी नी ले सकते। अर एक सच्ची बात और बताऊँ भाई "जो भुल्ला-बिसरा कोई मेंहमान आ भी जा, तो हमें जाड्डा चढ़ जा, हाथ जोड़ें अक कोइ ना आवे। इतनी तंगी चलरी जी।"

इस बातचीत के बाद हमें और गहराई से अहसास हुआ कि नोटबन्दी का देश के गरीब किसानों, मजदूरों, रेहडी-पटरी वाले दुकानदारों, फेरी लगाने वालों पर कितना गहरा असर पड़ा है।

आज देश की मेहनतकश आबादी की जिन्दगी, इस नोटबन्दी के चलते बेहद बुरी हालत में चली गयी है। बच्चों की पढाई का छूटना, बीमार का इलाज न हो पाना, परिवारों का रोटी-सब्जी, जूते-कपड़े, रजाई-कम्बल को तरस जाना। यह सभी चीजें यही लोग तैयार करते हैं। और यही इन सब से महरूम हैं। लेकिन उनकी जिन्दगी पर न तो अखबारों की नजर है, न टीवी चौनलों की। शहरों में बैंकों के आगे खाड़ी कतार की तकलीफ से आगे उनकी पहुँच नहीं है।

सुबह-ऐ-आजादी

ये दाग-दाग उजाला, ये शब गजीदा सहर
वो इन्तजार था जिसका, ये वो सहर तो नहीं

ये वो सहर तो नहीं कि जिसकी आरजू लेकर
चले थे यार कि मिल जायेगी कहीं न कहीं
फलक के दश्त में तारों की आखिरी मंजिल
कहीं तो होगा शब-ए-सुस्त मौज का साहिल
कहीं तो जाके रुकेगा सफीना-ए-गम-ए-दिल

जवाँ लहू की पुर-असरार शाहराहों में
चले जो यार तो दामन पे कितने दाग पड़े
पुकारती रहीं बाहें, बदन बुलाते रहे
बहुत अजीज थी लेकिन रुखे-सहर की लगन

बहुत करीं था हसीना-ए-नूर का दामन
सुबुक सुबुक थी तमन्ना, दबी-दबी थी थकन
सुना है हो भी चुका है फिराके
जुल्मत-ओ-नूर
सुना है हो भी चुका है
विसाले-मंजिल-ओ-गाम

बदल चुका है बहुत अहले दर्द का दस्तूर
निशाते-वस्ल हलाल-ओ-अजाबे-हिज्र हराम
जिगर की आग, नजर की उमंग, दिल की जलन
किसी पे चारे हिज्राँ का कुछ असर ही नहीं
कहाँ से आयी निगारे-सबा किधर को गयी
अभी चिरागे-सरे-रह को कुछ खबर ही नहीं

अभी गरानी-ए-शब में कमी नहीं आयी
निजाते-दीदा-ओ-दिल की घड़ी नहीं आयी
चले चलो कि वो मंजिल अभी नहीं आयी

--फैज अहमद फैज

अमरीका में नस्लवाद और ट्रम्प विरोधी प्रदर्शन

-- राजेश चौधरी

फासीवाद विरोधी प्रदर्शनकारी को गोली मारनेवाले ट्रम्प समर्थक को बरी कर दिया गया जबकि इस घटना को कवर करनेवाले पत्रकार पर 10 साल की सजा और जुर्माना ठोक दिया गया।

अमरीका के अति-दक्षिणपंथी अपने विरोधियों को दबाने के लिए पुलिस की मिलीभगत का सहारा लेकर हिंसक हो गये हैं।

निहत्थे फासीवाद विरोधी प्रदर्शनकारी को गोली मारनेवाले ट्रम्प समर्थक को सिएटल और वॉशिंगटन की पुलिस ने बिना कोई आरोप लगाये बरी कर दिया। जबकि 6 पत्रकारों को गिरफ्तार करके राष्ट्रपति के राज्य-अभिषेक के दौरान दंगा-फसाद को कवर करने के महाअपराध के जुर्म में उनपर 25 हजार डॉलर का जुर्माना और 10 साल की सजा का आरोप लगाया गया।

20 जनवरी को ट्रम्प के राज्य-अभिषेक के दिन, देश भर में भारी विरोध हुआ था। उसी दिन सिएटल में अति-दक्षिणपंथी और उकसानेवाले मिलो यानोपोलस का भी भाषण था। मिलो नस्लवाद को बढ़ावा देनेवाली वेबसाइट-ब्रेटबर्ट का सम्पादक भी है।

उस दिन सिएटल में ट्रम्प विरोधी प्रदर्शन बड़े सवेरे ही शुरू हो गया था। शाम को मिलो यानोपोलस ने वॉशिंगटन विश्वविद्यालय में एक कार्यक्रम आयोजित किया। समाजवादी और दूसरे वामपंथी धड़े के प्रदर्शनकारी उसी हाल के सामने विरोध कर रहे थे जहाँ मिलो यानोपोलस भाषण दे रहा था। प्रदर्शनकारी " नो ट्रम्प, नो केकेके, नो फासिस्ट यूएसए'' के नारे लगा रहे थे।

मिलो यानोपोलस के भाषण शुरू होने के कुछ मिनट बाद ही एक ट्रम्प समर्थक भीड़ में से निकला और 34 वर्षीय प्रदर्शनकारी जोश डुकेस के पेट में गोली मार दी। जोश डुकेस "विश्व के औद्योगिक मजदूरों का समाजवादी संघर्ष'' का सदस्य था। जैसे ही मिलो यानोपोलस को पता चला तो उसने झूठा दावा किया कि जिसे गोली मारी गयी है, वह हमारा समर्थक है। जल्दी ही स्थानीय मीडिया ने इस बात का खुलासा कर दिया कि जिसने गोली मारी वह मिलो यानोपोलस का समर्थक है और जिसे गोली लगी है वह वामपंथी कार्यकर्ता है।

सिएटल समाचार ने बताया कि जिसने गोली मारी उसने मिलो यानोपोलस से फेसबुक पर ट्रम्प के ऑटोग्राफ वाला एक हैट दिलवाने के लिए पूछा था, जिस पर लिखा हो- "मेक अमरीका ग्रेट अगेन''। समाचार पत्र ने यह भी बताया कि इस आक्रमणकारी ने अपने फेसबुक पेज पर ट्रम्प, यानोपोलस और राष्ट्रीय राइफल संघ का भी समर्थन किया था।

गोली मारने के बाद हमलावर ने, जिसका नाम सिएटल समाचार को नहीं पता, खुद को पुलिस के हाथों सौंप दिया। उसने दावा किया कि उसने यह सब आत्मरक्षा में किया है। सिएटल पुलिस ने उसे बिना कोई आपराधिक मामला दर्ज किये छोड़ दिया।

जोश डुकेस, जिसके पेट में गोली मारी गयी, जख्मी हालत में अस्पताल में भर्ती कर दिया गया। जोश डुकेस के वकील ने स्थानीय मीडिया को बताया कि वह उसका नाम सार्वजनिक करने को लेकर चिंतित था, "जैसाकि वास्तव में प्रताड़ना और धमकियों का बहुत ज्यादा जोखिम है, मेरे मुवक्किल को अपनी चोट से उबरने के लिए आराम और समय की जरूरत है''। जबकि ट्रम्प समर्थक सड़क पर घूमने को आजाद हैं। बाद में प्रदर्शनकारियों की भीड़ में से 230 लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया और सबके ऊपर दंगा फैलाने के आपराधिक मुकदमे दर्ज किये गये।

पुलिस ने 20 जनवरी को न सिर्फ प्रदर्शनकारियों को गिरफ्तार किया बल्कि कानूनी पर्यवेक्षकों, डॉक्टरों और मीडियाकर्मियों को भी गिरफ्तार कर लिया। 6 पत्रकारों के ऊपर दंगा भड़काने का आरोप है। जिसमें वोकटिव के पत्रकार इवान एंगेल, आरटी अमरीका के अलेक्स रुबिंस्टीन और आल्टरनेट फ्रीलान्सर के पत्रकार आरोन कान्तु शामिल हैं।

पत्रकार बचाव समिति ने अधिकारियों के इस व्यवहार की भर्त्सना की और आरोपों को निराधार और अनुचित बताया। उसने चेतावनी दी कि आगे से सभी विरोध प्रदर्शनों को कवर करने का संदेश पत्रकारों को दिया जायेगा।

रुबिंस्टीन का कहना है कि उसने पुलिस को अपनी मीडियाई पहचान दिखाई थी। लेकिन पुलिसवाले ने उसके चेहरे पर एक फ्लैश ग्रिनेड दे मारी, जिसने उसे अस्थायी तौर पर अंधा बना दिया और उसे गिरफ्तार कर लिया गया। सिपाही ने कहा-- "यहाँ खड़ा हर कोई गिरफ्तार होगा, इससे फर्क नहीं पड़ता कि कोई मीडिया से है।''

पुलिस ने सभी गिरफ्तार लोगों के फोन, कैमरे और दूसरी निजी वस्तुएँ जब्त कर ली थी। जब्त फोन और कैमरों के साथ पुलिसवालों ने छेड़छाड़ की थी।

वकीलों के राष्ट्रीय समूह ने भीड़ की गिरफ्तारी को गैर कानूनी बताया। प्रदर्शनकारियों और मीडियाकर्मियों की गिरफ्तारी, उन पर रासायनिक हाथियारों का उपयोग और कालीमिर्च की स्प्रे को भी गैर-कानूनी कार्रवाई बताया गया।

"विश्व औद्योगिक मजदूर संघ'' ने कानून को पाखंड बताया है और कहा है कि अमरीका में हिंसा के दोहरे मानदण्ड हैं। दक्षिणपंथी कार्यकर्ता को प्रदर्शनकारियों को गोली मारने पर भी कोई सजा नहीं है। उन्होंने

यह भी लिखा कि "हम उस दौर में जी रहे हैं जब कोई दक्षिणपंथी निहत्थे प्रदर्शनकारी को गोली मारकर आत्मरक्षा (सेल्फ डिफेंस) का दावा कर सकता है।''

"विश्व औद्योगिक मजदूर संघ'' ने बताया कि पीड़ित जोश डुकेस प्रदर्शनकारियों और विरोधियों के बीच बढ़ते संघर्ष को कम करने की कोशिश कर रहा था। संघ ने यह भी बताया कि कई चश्मदीद गवाहों के अनुसार गोली चलाने वाला दक्षिणपंथी "नशे में धुत था और प्रदर्शनकारियों पर भड़कता हुआ बाहर आया था।''

''हम सिएटल पुलिस की चुप्पी के चलते परेशान हैं और हम वाशिंगटन विश्वविद्यालय प्रशासन द्वारा कोई कार्रवाई न करने की भी भर्त्सना करते हैं।''

''हमारे सभी साथी, गोली लगने वाले के लिए सहानुभूति प्रकट करते हैं और आपराधिक मुकदमे की न्यायिक प्रक्रिया में सहयोग की इच्छा व्यक्त करते हैं।'' संघ ने यह भी कहा कि यह पुलिस और राज्य द्वारा कानून का घोर उल्लंघन है और पुलिस की मिलीभगत साबित करती है कि पुलिस हिंसा करने वालों के साथ है।

"विश्व औद्योगिक मजदूर संघ'' ने बताया कि तथाकथित दक्षिणपंथी और अति दक्षिणपंथी राजनैतिक आंदोलन मिलो यानोपोलस जैसे गोरे राष्ट्रवादियों द्वारा चलाया जा रहा है। मिलो की वेबसाइट आज के दौर के नाजीवाद को दर्शाती है।

मिलो यानोपोलस अपने घोर दक्षिणपंथी विचारों के लिए कुख्यात है। वह इंटरनेट पर भड़काऊ सामग्री जारी करनेवाला, उन्मादी ट्रम्प भक्त, वामपंथ के खिलाफ सांस्कृतिक युद्ध चलाने वाला और उदारवादी मीडिया को तबाह करने के लिए प्रतिबद्ध है। वह नारीवादियों की निंदा करता है और वेबसाइट पर नस्लभेद और महिलाओं के खिलाफ आपत्तिजनक टिप्पणियों के चलते उसे ट्विटर पर बैन भी कर दिया गया था। मिलो यानोपोलस खुलेआम इस्लाम का विरोध करता है और गोरों की पश्चिमी सभ्यता को पूरी मानवता के लिए आदर्श बताता है।

वैश्विक मीडिया का मुस्लिम विरोधी चेहरा

-जगदीश्वर चतुर्वेदी

फिलिस्तीन के साथ वैश्विक मीडिया का रिश्ता बेहद जटिल और शत्रुतापूर्ण रहा है। कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण तथ्य हैं जिन पर ध्यान देने से बात ज्यादा साफ समझ में आ सकती है। कुछ तथ्य इजरायली मीडिया शोधकर्ताओं ने नवम्बर 2000 में प्रकाशित किये थे।

शोधकर्ताओं ने इजरायल-फिलिस्तीन संघर्ष की खबर भेजने वाले संवाददाताओं का अध्ययन करने के बाद बताया कि इजरायल में 300 मीडिया संगठनों के प्रतिनिधि इस संघर्ष की खबर देने के लिए नियुक्त किये गये हैं। इतनी बड़ी संख्या में संवाददाता मध्य-पूर्व में किसी दूसरी जगह नियुक्त नहीं हैं।

मिस्र में 120 विदेशी संवाददाता हैं। इनमें से दो-तिहाई पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमरीका से आते हैं। ज्यादातर संवाददाता जो वेस्ट बैंक और गाजा पट्टी से अंग्रेजी में खबर देते हैं, इजरायल में रहते हैं। इनमें अधिकांश यहूदी हैं। यही वजह है कि इनकी खबरें इजरायली दृष्टिकोण से भरी होती हैं।

प्रत्येक संवाददाता औसतन 10 वर्षों से इजरायल में रह रहा है। अनेक की इजरायली बीबियाँ हैं। अनेक स्थायी तौर पर यह काम कर रहे हैं। इन संवाददाताओं की मानसिकता पश्चिमी परस्त है इसलिए इन्हें इजरायल से खुद को जोड़ने में परेशानी नहीं होती। 91 प्रतिशत संवाददाताओं का मानना है कि उनकी इजरायल के बारे में 'अच्छी' समझ है।

इसके विपरीत 41 प्रतिशत का मानना है कि अरब देशों के बारे में उनकी 'अच्छी' समझ है। 35 प्रतिशत का मानना है कि उनकी 'औसतन' समझ है। ये यहूदी धर्म के बारे में ज्यादा जानते हैं। 57 प्रतिशत ने कहा कि वे यहूदी धर्म के बारे में 'अच्छा' जानते हैं। जबकि मात्र 10 फीसदी ने कहा कि वे इस्लाम के बारे में 'अच्छा' जानते हैं।

ये संवाददाता अरबी की तुलना में हिब्रू भाषा अच्छी जानते हैं। 54 फीसदी को हिब्रू की अच्छी जानकारी है जबकि 20 फीसदी को काम लायक जानकारी है। इसके विपरीत मात्र 6 प्रतिशत को अरबी का अच्छा ज्ञान है और मात्र 42 फीसदी संवाददाताओं को अरबी का नाममात्र का ज्ञान है।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि चन्द इजरायली संवाददाता अंग्रेजी समाचार एजेन्सियों के लिए लिखते हैं। फिलिस्तीन के बारे में छठे-छमाहे खबर दी जाती है। फिलिस्तीनी इलाकों में गये बगैर उनके बारे में खबर दे दी जाती है। सबसे बुरी बात यह कि इस इलाके में होने वाली घटना के बारे फिलिस्तीनियों की राय जानने की कोशिश तक नहीं की जाती। ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि क्या फिलिस्तीन-इजरायल संघर्ष की वस्तुगत प्रस्तुति सम्भव है?

वैश्विक मीडियाकर्मी ज्यों ही आतंकवाद को इस्लामिक चरमपंथ से जोड़कर बात करते हैं तो जाने-अनजाने इसके दुष्प्रभावों को दुनियाभर के मुसलमानों को झेलना पड़ता है। आतंकवाद चाहे वह किसी भी रुप में व्यक्त हो मूलतः राजनीतिक केटेगरी है। उसे धर्म से जोड़ना ठीक नहीं है।

जब भी कहीं पर आतंकवादी हमला होता है तो तत्काल मुसलमानों से पूछा

जाता है कि आपकी क्या राय है? प्रश्न उठता है कि क्या मीडिया भी राय लेते समय धार्मिक अस्मिता का ख्याल करता है? इसके लिए वे घिसी-पिटी प्रस्तुतियों पर जोर देते हैं। घिसी-पिटी प्रस्तुतियों के माध्यम से उसकी वैचारिक प्रकृति को छिपाया जाता है।

इस तरह की प्रस्तुतियों में मुख्य जोर इस बात पर रहता है कि वह किसका एजेण्ट है? जिसका एजेण्ट है उसने क्या दिया और क्या कहा? ओसामा बिन लादेन के बारे में विभिन्न माध्यमों में जो जानकारियां प्रस्तुत की गयी हैं उनमें मूलतः इन्हीं बातों का विवरण है। इन प्रस्तुतियों से उसकी वैचारिक प्रकृति गायब है।

आमतौर पर वैश्विक जनमाध्यमों में इस्लाम धर्म और मुसलमान के बारे में घिसी-पिटी प्रस्तुतियाँ मिलती हैं। इनमें इस्लाम और मुसलमान को आतंकवाद, पिछड़ेपन, बर्बरता और कट्टरपंथ का पर्याय बनाकर पेश किया जाता है। इसके अलावा हिन्दू धर्म बनाम इस्लाम धर्म, ईसाइयत बनाम इस्लाम धर्म, पश्चिमी सभ्यता बनाम प्राच्य सभ्यताएँ आदि रुपों में प्रस्तुतियाँ मिलती हैं।

इस प्रसंग में सबसे बड़ी बात यह है कि देश विशेष को धर्म की पहचान से जोड़ना ठीक नहीं है। यह गलती वे देश भी करते हैं जो अपने को इस्लामिक राष्ट्र कहते हैं और वैश्विक मीडियाकर्मी भी करते हैं। आमतौर पर यह मान लिया गया है कि जहाँ मुसलमान रहते हैं वे इस्लामिक राष्ट्र हैं। यदि इस केटेगरी के आधार पर वर्गीकरण करेंगे तो आधुनिक समाज विज्ञान की राष्ट्र-राज्य के विमर्श की समस्त वैज्ञानिक धारणाएँ धराशायी हो जायेंगी। धर्म को यदि भारत, अमरीका, ब्रिटेन आदि में राष्ट्र की पहचान से जोड़ना गलत माना जाता है तो यही बात उन देशों पर भी लागू होती है जिन्हें इस्लामिक राष्ट्र कहते हैं। असल में इस तरह की कोई भी केटेगरी राष्ट्र-राज्य के विमर्श को कट्टरपंथ के दायरे में ले जाती है। जाने-अनजाने हम सभी यह गलती करते हैं।

इस्लामिक समाज बेहद जटिल समाज है। इसकी संरचना का देश विशेष के उत्पादन सम्बंधों और आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया जाना चाहिए। इसके बावजूद यह सच है कि मध्य-पूर्व के कुछ देशों में जनतंत्र का अभाव है, आधुनिक उत्पादन सम्बंधों का अभाव है, कल्याणकारी कार्यक्रमों का अभाव है, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा, रोजगार, चिकित्सा आदि का अभाव है।

ईरान, सीरिया, तुर्की जैसे देशों में पूँजीवादी लोकतन्त्र है। इन्हें छोड़ दिया जाये तो लम्बे समय से बाकी देशों में राजशाही है या तानाशाही है। सेंसरशिप है। जिन देशों की बहुसंख्यक आबादी मुस्लिम है। इसके बावजूद यहाँ जो सरकारें हैं इनका आर्थिक-राजनीतिक कार्यक्रम है। व्यवस्था को ये सरकारें ही चला रही हैं। किन्तु इन समाजों में विविधता है। जीवन शैली और शासन के रुपों में अन्तर है। मध्य-पूर्व के सभी देश एक जैसे नहीं हैं। इनका आन्तरिक ताना-बाना और परम्पराएँ अलग-अलग हैं। वैश्विक मीडिया कभी-भी इन समाजों में प्रवेश करके जानने की कोशिश नहीं करता। अतः इन देशों को एक कोटि में रखकर विश्लेषित नहीं किया जा सकता। यह सच नहीं है कि इन समाजों को मुल्ला या इसी तरह की कोई संस्था संचालित करती है।

सच्चाई यह है कि पश्चिमी समाजों के उद्भव और विकास के बारे में विस्तृत अध्ययन हुए हैं। जबकि इस्लामिक समाज के बारे में गम्भीर अध्ययन अभी तक नहीं हुए हैं। सामान्यतः इस्लामिक समाज के बारे में एक अनुसंधानकर्त्ता के बजाय एक पत्रकार की अतिरंजित बयानबाजी देखने को मिलेगी। इस तरह के लेखन में आमतौर पर इस्लाम का आतंकवाद या कट्टरपंथ से सम्बंध जोड़ दिया जाता है। इस तरह की प्रस्तुतियों का लक्ष्य इस्लाम के खिलाफ ईसाइयत या हिन्दू कट्टरपंथ को उभारना और एकजुट करना होता है। साथ ही इस्लामिक समाज के बारे पश्चिम के विचारों को आरोपित करना होता है। इस तरह की प्रस्तुतियाँ जातीय और राष्ट्रीय पहचान के ऊपर धार्मिक पहचान को वरीयता प्रदान करती हैं।

वैश्विक मीडिया और भारत के व्यावसायिक पत्रकारों की राय में अभी भी मुसलमानों की धार्मिक पहचान खत्म नहीं हुई है, उनकी पहचान का राष्ट्रीयता की पहचान में रुपान्तरण नहीं हुआ है। यह बात सच्चाई से मेल नहीं खाती।

इसके विपरीत वे घिसी-पिटी बात करते हैं कि मुसलमान कट्टर और पिछड़े होते हैं। वे कभी नहीं बदलते। वे धर्म के पक्के होते हैं। धर्म के अलावा उनके पास और कोई पहचान नहीं होती। इसके विपरीत पश्चिमी समाजों की धार्मिक पहचान को छिपाया जाता है। इन समाजों की राष्ट्रीय पहचान, देश की पहचान, सभ्यता की पहचान को उभारा जाता है। जबकि औपनिवेशिक राष्ट्रों की राष्ट्रीय पहचान को एक सिरे से अस्वीकार किया जाता है। इन देशों की मध्यकालीन अस्मिताओं को उभारा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मध्य-पूर्व के देशों या तीसरी दुनिया के देशों की राष्ट्रीय पहचान को वैश्विक मीडिया विकृत रुप में पेश करता है। उनके लिए पहचान की आधुनिक कोटियों का इस्तेमाल नहीं करते। सच्चाई यह है कि दुनिया में कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ धर्म न हो, धर्म के मानने वाले न हों, धार्मिक संस्थान न हों। किन्तु धार्मिक पहचान के साथ सिर्फ मुसलमानों को पेश किया जाता है

इस्लाम के प्रति वैश्विक मीडिया में घृणा कैसे आयी? आज अमरीका अरब देशों और फिलिस्तीनियों के बजाय इजरायल के साथ खड़ा है। इस इलाके में अमरीका पश्चिम का वर्चस्व स्थापित करना चाहता है। वह यह भ्रम पैदा कर रहा है कि 'ओरिएण्ट' के ऊपर 'पश्चिम' का राज चलेगा। दूसरा भ्रम यह फैला रहा है कि पश्चिम की स्व-निर्मित तस्वीर सर्वश्रेष्ठ है। तीसरा भ्रम यह फैला रहा है कि इजरायल

पश्चिमी मूल्यों का प्रतीक है। एडवर्ड सईद ने लिखा कि इन तीन भ्रमों के लिए ही अमरीका का सारा प्रचारतंत्र काम कर रहा है। इन भ्रमों के इर्द-गिर्द राष्ट्रों को गोलबन्द किया जा रहा है।

ध्यान रहे, मीडिया में जो पेश किया जाता है वह न तो स्वतः स्फूर्त होता है और न पूरी तरह स्वतंत्र होता है और न वह सच्चाई की तात्कालिक उपज होता है। बल्कि वह निर्मित सत्य होता है। यह अनेक रूपों में आता है। उसकी विविधता को हम रोक नहीं सकते। इसकी प्रस्तुति के कुछ नियम हैं जिनके कारण हमें यह विवेकपूर्ण लगता है। यही वजह है कि वह खुद सच्चाई से ज्यादा सम्प्रेषित होता है। उसकी तस्वीर मीडिया द्वारा पेश सामग्री से बनती है। वह पिछले दरवाजे से उन नियमों के साथ सहमति बनाता है या उनको व्यवस्थित करता है जो सच्चाई को खबर या कहानी में रुपान्तरित करते हैं। चूँकि मीडिया को विशेष श्रोता तक पहुँचना होता है, फलतः उसे इकसार शैली में सच्चाई के अनुमानों से नियमित किया जाता है। इकसार छवि हमेशा संकुचित और सतही होती है। इसी कारण जल्दी ग्रहण कर ली जाती है, मुनाफा देने वाली होती है और इसके निर्माण में कम लागत लगती है। इस तरह की प्रस्तुतियों को सच कहना ठीक नहीं होगा। बल्कि ये विशेष राजनीतिक संदर्भ और मंशा के तहत निर्मित की जाती हैं। इसके तहत यह तय किया जाता है कि क्या पेश किया जाय और क्या पेश न किया जाय।

अमरीकी पत्रकार यह मानकर चलता है कि उसका देश एकमात्र महाशक्ति है और उसके हितों को आगे बढ़ाना उसका लक्ष्य है। वह यह भी जानता है कि अमरीका के हितों और अन्य देशों के हितों में फर्क है, उनके हित एक नहीं हैं। अमरीकी पत्रकार यह भी मानता है कि वह जिस कारपोरेशन का हिस्सा है वह अमरीकी सत्ता में हिस्सेदार है। अतः वह पूरी ताकत के साथ अमरीकी हितों को साधने का काम करता है। वह माध्यमों की स्वतंत्रता को कारपोरेशन और राष्ट्रवाद के मातहत कर देता है। इस तरह वह सीधे राष्ट्र के साथ पहचान बनाता है। यही वजह है कि अमरीकी मीडिया कभी भी विदेश नीति से भिन्न दृष्टिकोण से खबरें पेश नहीं करता। बाहरी दुनिया की सूचनाएँ अमरीकी नीति के तहत एकत्र करता है। वह उससे भिन्न रवैया जनता के दबाव में व्यक्त करता है। अमरीकी माध्यमों में विदेशी राष्ट्रों को इस परिप्रेक्ष्य से पेश किया जाता है कि पश्चिम के हितों को विस्तार दिया जाय। इस तरह की प्रस्तुतियों में अमरीका की राय को बड़े पैमाने पर पेश किया जाता है और अन्य राष्ट्रों की राय की उपेक्षा की जाती है। अमरीकी नीति किस बात से सहमत है, इस पहलू को ख्याल में रखकर रिपोर्ट तैयार की जाती है। सारा मीडिया इसे आम सहमति के तौर पर पेश करता है।

आज पश्चिम क्या है और आगे क्या होगा, वैश्विक मीडिया इसके प्रति जबावदेह होता है। यहाँ सहमति की सीमा तय है। साथ ही इनमें यह धारणा प्रचलित है कि अमरीका महान शक्तियों का प्रतीक है, महान सैन्य शक्ति है, उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सैन्य शक्ति के इस्तेमाल का अधिकार है, वह विश्व के लिए जो कुछ करता है अच्छा करता है, सही करता है। यही वह मिथ है जिसे सच्चाई ने बार-बार गलत साबित किया है।

अमरीका ने आतंकवादी गिरोहों के निर्माण को लेकर जितने भी अपराध किये वे सब अमरीकी जनता को तब तक जायज लग रहे थे जब तक 11 सितम्बर का हमला नहीं हुआ था। इस हमले के कारण यह मिथ टूटा है कि अमरीका सुरक्षित है और अमरीका आतंकवादियों को खुली मदद देकर सही काम कर रहा है। वैश्विक माध्यमों के पास इसका तर्क नहीं है कि उन्होंने अब तक आतंकवादियों को कभी आतंकवादी क्यों नहीं कहा? क्यों उन्हें स्वाधीनता सेनानी बनाया गया? कल तक जो विद्रोही था वह 11सितम्बर के बाद से आतंकवादी कैसे हो गया? जो सरकार खुलेआम आतंकवादियों के प्रशिक्षण से लेकर संरक्षण तक का सारा काम करती रही है वह रातों-रात आतंकवाद के खिलाफ संघर्ष में अमरीका की मददगार कैसे हो गयी? यह जानते हुए कि तालिबान कट्टरपंथी है, उन्हें सीआईए और अमरीका ने तीन अरब डॉलर की मदद क्यों दी? क्या कारण थे कि सन् 2002 में अमरीका ने तालिबान को मानवता के आधार पर 500 लाख पौण्ड की सहायता राशि दी। दस वर्षों से पाकिस्तान के खजाने से प्रतिमाह 30 लाख डॉलर का भुगतान तालिबान को होता रहा था। यह सहायता 11 सितम्बर के बाद बन्द हुई है। यह सच है कि अमरीका दुनिया भर में आतंकवादी गुटों को आर्थिक और सैन्य मदद देता रहा है। मदद का सबूत यह है कि इन सब संगठनों के अमरीका में बैंक एकाउण्ट हैं। इसका यह भी अर्थ है कि इन संगठनों की गतिविधियाँ अमरीका से संचालित होती रही हैं। वैचारिक तौर पर वैश्विक मीडिया और अमरीका का इनके साथ सहयोग, सम्पर्क और रिश्ता है। ये वे आयाम हैं जिनको अमरीका के मौजूदा राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प छिपा रहे हैं, असल में वे जिस दल के नुमाइंदे हैं वह दल अमरीकी सत्ता की आतंकवाद विरोधी नीति का निर्माता रहा है, उस दल को रिपब्लिकन पार्टी कहते हैं और इसका यहूदी चरमपंथियों से गहरा सम्बंध है। अमरीका द्वारा इस्लाम और मुसलमान विरोधी जो मुहिम छुप-छिपाकर चलायी जा रही थी उस मुहिम को ट्रम्प ने खुली मुहिम का रूप देकर सबको परेशानी में डाल दिया है। अमरीका के लोग अपने सत्ताधारियों की इस्लाम विरोधी मुहिम को जानकर भी अनदेखा करते रहे हैं, ट्रम्प ने नया यह किया है कि उसने मुस्लिम विरोध को खुले विरोध में प्रकट कर दिया है, अब यह विरोध अमरीकी नागरिकों के हितों और अधिकारों के हनन की शक्ल ले चुका है। इसका हर स्तर पर विरोध किया जाना चाहिए।

अमरीकी मीडिया : सच का तख्तापलट

--पॉल क्रेग रॉबर्ट्स

जी हाँ, बिल्कुल। अमरीका अब सोवियत संघ है। बस बात खत्म। ट्रम्प एक कम्युनिस्ट है जिसने पुतिन के आदेश पर काम किया। ट्रम्प लाल झंडे वाला है। यही तो उसका खेल था। वह एक अरबपति कम्युनिस्ट है।

मजाक बहुत असरदार होता है लेकिन वॉशिंगटन पोस्ट, न्यूयॉर्क टाइम्स, सीएनएन और जेनुइन पत्रकार का दिखावा करने वाले बाकी प्रेस्टीट्यूट्स (पीत पत्रकारिता करने वाले) इतना तो कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन जैसा कि मैं और ग्लेन ग्रीनवाल्ड जैसे अन्य जेनुइन पत्रकारों ने इस बात को रेखांकित किया है, प्रेस्टीट्यूट्स द्वारा प्रचारित की जाने वाली खबरें परमाणु युद्ध का आतंक पैदा करती हैं।

सालों से रूस और उसके राष्ट्रपति को बेहिसाब लांछन का सामना करना पड़ा है। रूसी जानते हैं कि दक्षिणी ओसीशिया में जार्जिया का हमला (यह तब हुआ जब पुतिन बीजिंग ओलंपिक में थे) वॉशिंगटन के भड़काने पर अंजाम दिया गया। रूसी जानते हैं कि यूक्रेन में वॉशिंगटन के समर्थन में हुआ तख्तापलट एक उकसावा था जिसके पीछे क्रीमिया में काला सागर में मौजूद रूस के नौसैनिक अड्डे पर कब्जा करने और भूमध्यसागर से रूस का सम्पर्क काट देने का मकसद छिपा था। ये तब किया गया जब पुतिन सोच्चि के ओलंपिक में थे। रूसी जानते हैं कि वॉशिंगटन जानता है कि हिलेरी क्लिंटन की ईमेल हैकिंग और अमरीकी राष्ट्रपति चुनावों को प्रभावित करने के रूस पर लगे आरोप झूठ का पुलिंदा हैं। रूसी जानते हैं कि वॉशिंगटन द्वारा प्रचारित 'रूसी खतरा' एक झूठ है जिसमें भविष्य के खतरों को भी समाहित किया गया है जैसे कि पोलैंड और बाल्टिक क्षेत्रों पर आसन्न रूसी हमला।

रूसी समझते हैं कि रूस की सीमा पर मौजूद अमरीकी बैलिस्टिक मिसाइल अड्डे उसी तरह की उकसावेबाजी हैं जैसा कि रूस की सीमा के पास और काला सागर में नाटो का सैन्य अभ्यास किया जाना। इस सूची में आप खुद अपनी तरफ से भी बहुत कुछ जोड़ सकते हैं।

लेकिन ये झूठ कैसे होते हैं? बिल्कुल सर्वव्यापी। लेकिन ये दिनों-दिन अनर्गल होते गये हैं और अब तो अमरीकी सरकार के विभागों जैसे सीआईए, कार्यकारी एजेंसियों और अधिकांश अमरीकी सीनेटरों व जन प्रतिनिधियों में यह संस्थागत हो चुका है। पूरे पश्चिमी जगत में निरन्तर बेइंतहा मीडिया प्रचार के मार्फत इस झूठ पर ठप्पा लगाये जाने की कोशिशों को रूसी इस बात के संकेत की तरह देखते हैं कि पश्चिमी जनमत को रूस पर हमले के लिए तैयार किया जा रहा है। कई मौकों पर पुतिन सार्वजनिक तौर पर चेतावनी दे चुके हैं कि पश्चिमी दुष्प्रचार खतरनाक रूप से अस्थिरता पैदा करने वाला है। हालाँकि, जैसे उन्हें खुद महसूस होता है कि उनकी चेतावनी कोई नहीं सुनता है।

अपने रूस विरोधी दुष्प्रचार के प्रति वॉशिंगटन का इतना ज्यादा रुझान है कि अमरीकी कांग्रेस ने एक खुफिया विधेयक पास किया है जिसमें एक धारा (पांच) फर्जी खबरों की मुखालफत करने वालों के बारे में है। इस पर ओबामा ने हस्ताक्षर किये। यह विधेयक फर्जी खबरों का विरोध करने वालों पर लगाम लगती है। विरोधियों की समानांतर वेबसाइटें हैं जो आधिकारिक झूठ की आँख में आँख डालकर चुनौती देती हैं, जैसे कि हमारी वेबसाइट पॉलक्रेगरोबर्टस डाट ऑर्ग। सच्चाई को सामने लाने वाली समानांतर मीडिया पर रूसी प्रभाव में होने के आरोप मढ़े जाते हैं। पिछले साल गोपनीयता के आवरण में एक वेबसाइट लॉन्च की गयी। इसने हाल ही में 200 वेबसाइटों की सूची पोस्ट की है जिन पर पूरा या आंशिक रूप से रूसी प्रभाव का आरोप लगाया गया है। वॉशिंगटन पोस्ट ने गैर-जिम्मेदाराना तरीके से, रूसी सरकार के लिए काम करने वाली 200 वेबसाइटों की इस फर्जी खबर पर एक लम्बा लेख प्रकाशित कर इसका समर्थन किया।

दूसरे शब्दों में कहें तो सच्चाई का गला घोंटना, भ्रष्ट अमरीकी शासक वर्ग का अंतिम हथियार है। पिछले 24 सालों में वॉशिंगटन की तीन सरकारें, अपने देश की नागरिक आजादी समेत 9 या इससे भी ज्यादा देशों में दसियों लाख लोगों की हत्या करवा चुकी हैं। इतिहास में अपनी तरह के इतने बड़े पैमाने पर हुए अपराध पर पर्दा डालने के लिए बिक चुकी मीडिया ने झूठ बोला, दुष्प्रचार किया और निंदा किया।

और वॉशिंगटन की आपराधिक सरकार खुद को दुनिया के सामने लोकतंत्र, मानवाधिकार, सच्चाई और इंसाफ की अनिवार्य रक्षक के रूप में पेश करती है। जैसा कि हाल ही में रूस के विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता ने कहा था, जो बात अमरीका को बिल्कुल अपवाद बना देती है वह है, शैतान की सेवा में अपनी पूरी ताकत झोंक देना।

वॉशिंगटन न केवल अपने विरोधियों बल्कि उन सभी को रूसी एजेंट होने का तमगा दे देता है जो सच बोलते हैं। उसे उम्मीद है कि रूस को हैवान घोषित कर देने से लोगों में पर्याप्त डर पैठ गया है और इस तरह अमरीकी जनता उनपर भी विश्वास नहीं करेंगी जो सच बोलते हैं।

ऐसा स्वाभाविक लगने लगा है कि यह सत्ता किसी भी कीमत पर ताकत को अपने हाथ में ही रखने के लिए इतनी हद तक आगे बढ़ चुकी है कि सीआईए का डायरेक्टर सार्वजनिक रूप से डोनल्ड ट्रम्प के चुनाव को रूसी हस्तक्षेप बताता है लेकिन एक भी ऐसा तथ्य पेश नहीं कर पाता है जिस पर निश्चयात्मक रूप से भरोसा किया जा सकता हो।

निर्वाचित राष्ट्रपति के खिलाफ सीआईए का खुला, जबरदस्त और अभूतपूर्व दुष्प्रचारात्मक हमला ही वह वजह बना जिसके चलते ट्रम्प ने सीआईए डायरेक्टर जॉन ब्रेनन को लताड़ा (अब उनकी विदाई हो चुकी है, अनु.)। ट्रम्प के पसंदीदा व्यक्ति माइक पोंपियो अब नये डायरेक्टर हैं लेकिन ऐसी भी खबरें हैं कि इस खुफिया एजेंसी को ट्रम्प पुनर्गठित करना चाहते हैं। ऐसा करने की इच्छा रखने वाले अंतिम राष्ट्रपति जॉन एफ केनेडी थे, जिनकी सीआईए ने ये सब करने से पहले ही हत्या करवा दी थी। केनेडी मानते थे कि वह बिना पुनः निर्वाचित हुए सीआईए का पुनर्गठन नहीं कर सकते थे। इस कारण उनकी हत्या की साजिश रचने में सीआईए को समय मिल गया।

ऐसा लगता है कि ट्रम्प को इस खतरे का आभास मिल चुका है। उन्होंने घोषणा की है कि वह अपनी सुरक्षा में निजी सिक्युरिटी एजेंसी का भी इस्तेमाल करेंगे।

क्या यह ताज्जुब की बात नहीं है? रूस के राष्ट्रपति सार्वजनिक रूप से कहते हैं कि वॉशिंगटन दुनिया को परमाणु युद्ध की ओर ले जा रहा है और उनकी यह चेतावनी अनसुनी कर दी गयी। अमरीका का निर्वाचित राष्ट्रपति सीआईए की ओर से तीखे हमले का शिकार होता है और वह जानता है कि वह अपने आधिकारिक सुरक्षा बलों पर भरोसा नहीं कर सकता है। कोई भी ये सोच सकता है कि ये असाधारण बातें अन्दरखाने चलती रहती हैं। लेकिन आप ऐसी बहसें सिर्फ उन चन्द वैकल्पिक मीडिया वेबसाइटों पर ही पा सकते हैं, जिनके बारे में वॉशिंगटन पोस्ट जैसी मुख्य धारा की मीडिया का कहना है कि ये रूसी प्रभाव में हैं। ○

व्यंग्य

ठिठुरता हुआ गणतंत्र

-हरिशंकर परसाई

चार बार मैं गणतंत्र-दिवस का जलसा दिल्ली में देख चुका हूँ। पाँचवीं बार देखने का साहस नहीं। आखिर यह क्या बात है कि हर बार जब मैं गणतंत्र-समारोह देखता, तब मौसम बड़ा क्रूर रहता। छब्बीस जनवरी के पहले ऊपर बर्फ पड़ जाती है। शीत-लहर आती है, बादल छा जाते हैं, बूँदाबाँदी होती है और सूर्य छिप जाता है। जैसे दिल्ली की अपनी कोई अर्थनीति नहीं है, वैसे ही अपना मौसम भी नहीं है। अर्थनीति जैसे डॉलर, पौंड, रुपया, अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा-कोष या भारत सहायता क्लब से तय होती है, वैसे ही दिल्ली का मौसम कश्मीर, सिक्किम, राजस्थान आदि तय करते हैं। इतना बेवकूफ भी नहीं कि मान लूँ, जिस साल मैं समारोह देखता हूँ, उसी साल ऐसा मौसम रहता है। हर साल देखने वाले बताते हैं कि हर गणतंत्र-दिवस पर मौसम ऐसा ही धूपहीन ठिठुरनवाला होता है। आखिर बात क्या है? रहस्य क्या है? जब कांग्रेस टूटी नहीं थी, तब मैंने एक कांग्रेस मंत्री से पूछा था कि यह क्या बात है कि हर गणतंत्र-दिवस को सूर्य छिपा रहता है? सूर्य की किरणों के तले हम उत्सव क्यों नहीं मना सकते? उन्होंने कहा - जरा धीरज रखिये। हम कोशिश में हैं कि सूर्य बाहर आ जाये। पर इतने बड़े सूर्य को बाहर निकालना आसान नहीं हैं। वक्त लगेगा। हमें सत्ता के कम से कम सौ वर्ष तो दीजिये। दिये। सूर्य को बाहर निकालने के लिए सौ वर्ष दिये, मगर हर साल उसका छोटा-मोटा कोना तो निकलता दिखना चाहिए। सूर्य कोई बच्चा तो है नहीं जो अन्तरिक्ष की कोख में अटका है, जिसे आप आपरेशन करके एक दिन में निकाल देंगे। इधर जब कांग्रेस के दो हिस्से हो गये तब मैंने एक इंडिकेटी कांग्रेसी से पूछा। उसने कहा - 'हम हर बार सूर्य को बादलों से बाहर निकालने की कोशिश करते थे, पर हर बार सिंडीकेट वाले अड़ंगा डाल देते थे। अब हम वादा करते हैं कि अगले गणतंत्र दिवस पर सूर्य को निकालकर बताएँगे। एक सिंडीकेटी पास खड़ा सुन रहा था। वह बोल पड़ा - 'यह लेडी (प्रधानमंत्री) कम्युनिस्टों के चक्कर में आ गयी है। वही उसे उकसा रहे हैं कि सूर्य को निकालो। उन्हें उम्मीद है कि बादलों के पीछे से उनका प्यारा 'लाल सूरज' निकलेगा। हम कहते हैं कि सूर्य को निकालने की क्या जरूरत है? क्या बादलों को हटाने से काम नहीं चल सकता? मैं संसोपाई भाई से पूछता हूँ। वह कहता है - 'सूर्य गैर-कांग्रेसवाद पर अमल कर रहा है। उसने डाक्टर लोहिया के कहने पर हमारा पार्टी-फार्म दिया था। कांग्रेसी प्रधानमंत्री को सलामी लेते वह कैसे देख सकता है? किसी गैर-काँग्रेसी को प्रधानमंत्री बना दो, तो सूर्य क्या, उसके अच्छे भी निकल पड़ेंगे। जनसंघी भाई से भी पूछा। उसने कहा - 'सूर्य सेक्युलर होता तो इस सरकार की परेड में निकल आता। इस सरकार से आशा मत करो कि भगवान अंशुमाली को निकाल सकेगी। हमारे राज्य में ही सूर्य निकलेगा। साम्यवादी ने मुझसे साफ कहा - 'यह सब सी.आई.ए. का षडयंत्र है। सातवें बेड़े से बादल दिल्ली भेजे जाते हैं।' स्वतंत्र पार्टी के नेता ने कहा - 'रूस का पिछलग्गू बनने का और क्या नतीजा होगा? प्रसोपा भाई ने अनमने ढंग से कहा - 'सवाल पेचीदा है। नेशनल कौंसिल की अगली बैठक में इसका फैसला होगा। तब बताऊँगा।' राजाजी से मैं मिल न सका। मिलता, तो वह इसके सिवा क्या कहते कि इस राज में तारे निकलते हैं, यही गनीमत है।' मैं इन्तजार करूँगा, जब भी सूर्य निकले।

स्वतंत्रता-दिवस भी तो भरी बरसात में होता है। अंग्रेज बहुत चालाक हैं। भरी बरसात में स्वतंत्र करके चले गये। उस कपटी प्रेमी की तरह भागे, जो प्रेमिका का छाता भी ले जाये। वह बेचारी भीगती बस-स्टैंड

जाती है, तो उसे प्रेमी की नहीं, छाता-चोर की याद सताती है। स्वतंत्रता-दिवस भीगता है और गणतंत्र-दिवस ठिठुरता है। मैं ओवरकोट में हाथ डाले परेड देखता हूँ। प्रधानमंत्री किसी विदेशी मेहमान के साथ खुली गाड़ी में निकलती हैं। रेडियो टिप्पणीकार कहता है - 'घोर करतल-ध्वनि हो रही है।' मैं देख रहा हूँ, नहीं हो रही है। हम सब तो कोट में हाथ डाले बैठे हैं। बाहर निकालने का जी नहीं हो रहा है। हाथ अकड़ जायेंगे।

लेकिन हम नहीं बजा रहे हैं, फिर भी तालियाँ बज रहीं हैं। मैदान में जमीन पर बैठे वे लोग बजा रहे हैं, जिनके पास हाथ गरमाने के लिए कोट नहीं है। लगता है, गणतंत्र ठिठुरते हुए हाथों की तालियों पर टिका है। गणतंत्र को उन्हीं हाथों की ताली मिलतीं हैं, जिनके मालिक के पास हाथ छिपाने के लिए गर्म कपड़ा नहीं है। पर कुछ लोग कहते हैं - 'गरीबी मिटनी चाहिए।' तभी दूसरे कहते हैं - 'ऐसा कहने वाले प्रजातंत्र के लिए खतरा पैदा कर रहे हैं।'

गणतंत्र-समारोह में हर राज्य की झाँकी निकलती है। ये अपने राज्य का सही प्रतिनिधित्व नहीं करतीं। 'सत्यमेव जयते' हमारा मोटो है मगर झाँकियाँ झूठ बोलती हैं। इनमें विकास-कार्य, जनजीवन, इतिहास आदि रहते हैं। असल में हर राज्य की उस विशिष्ट बात को यहाँ प्रदर्शित करना चाहिए जिसके कारण पिछले साल वह राज्य मशहूर हुआ। गुजरात की झाँकी में इस साल दंगे का दृश्य होना चाहिए, जलता हुआ घर और आग में झोंके जाते बच्चे। पिछले साल मैंने उम्मीद की थी कि आंध्र की झाँकी में हरिजन जलते हुए दिखाये जायेंगे। मगर ऐसा नहीं दिखा। यह कितना बड़ा झूठ है कि कोई राज्य दंगे के कारण अन्तरराष्ट्रीय ख्याति पाये, लेकिन झाँकी सजाये लघु उद्योगों की। दंगे से अच्छा गृह-उद्योग तो इस देश में दूसरा है नहीं। मेरे मध्यप्रदेश ने दो साल पहले सत्य के नजदीक पहुँचने की कोशिश की थी। झाँकी में अकाल-राहत कार्य बतलाये गये थे। पर सत्य अधूरा रह गया था। मध्यप्रदेश उस साल राहत कार्यों के कारण नहीं, राहत-कार्यों में घपले के कारण मशहूर हुआ था। मेरा सुझाव माना जाता तो मैं झाँकी में झूठे मास्टर रोल भरते दिखाता, चुकारा करनेवाले का अँगूठा हजारों मूर्खों के नाम के आगे लगवाता। नेता, अफसर, ठेकेदारों के बीच लेन-देन का दृश्य दिखाता। उस झाँकी में वह बात नहीं आयी। पिछले साल स्कूलों के 'टाट-पट्टी कांड' से हमारा राज्य मशहूर हुआ। मैं पिछले साल की झाँकी में यह दृश्य दिखाता - 'मंत्री, अफसर वगैरह खड़े हैं और टाट-पट्टी खा रहे हैं।

जो हाल झाँकियों का, वही घोषणाओं का। हर साल घोषणा की जाती है कि समाजवाद आ रहा है। पर अभी तक नहीं आया। कहाँ अटक गया? लगभग सभी दल समाजवाद लाने का दावा कर रहे हैं, लेकिन वह नहीं आ रहा। मैं एक सपना देखता हूँ। समाजवाद आ गया है और वह बस्ती के बाहर टीले पर खड़ा है। बस्ती के लोग आरती सजाकर उसका स्वागत करने को तैयार खड़े हैं। पर टीले को घेरे खड़े हैं कई समाजवादी। उनमें से हरेक लोगों से कहकर आया है कि समाजवाद को हाथ पकड़कर मैं ही लाऊँगा। समाजवाद टीले से चिल्लाता है - 'मुझे बस्ती में ले चलो।' मगर टीले को घेरे समाजवादी कहते हैं - 'पहले यह तय होगा कि कौन तेरा हाथ पकड़कर ले जायेगा।'

समाजवाद की घेराबन्दी है। संसोपा-प्रसोपावाले जनतांत्रिक समाजवादी हैं, पीपुल्स डेमोक्रेसी और नेशनल डेमोक्रेसीवाले समाजवादी हैं। क्रांतिकारी समाजवादी हैं। हरेक समाजवाद का हाथ पकड़कर उसे बस्ती में ले जाकर लोगों से कहना चाहता है - 'लो, मैं समाजवाद ले आया।' समाजवाद परेशान है। उधर जनता भी परेशान है। समाजवाद आने को तैयार खड़ा है, मगर समाजवादियों में आपस में धौल-धप्पा हो रहा है। समाजवाद एक तरफ उतरना चाहता है कि उस पर पत्थर पड़ने लगते हैं। 'खबरदार, उधर से मत जाना!' एक समाजवादी उसका एक हाथ पकड़ता है, तो दूसरा हाथ पकड़कर खींचता है। तब बाकी समाजवादी छीना-झपटी करके हाथ छुड़ा देते हैं। लहू-लुहान समाजवाद टीले पर खड़ा है।

इस देश में जो जिसके लिए प्रतिबद्ध है, वही उसे नष्ट कर रहा है। लेखकीय स्वतंत्रता के लिए प्रतिबद्ध लोग ही लेखक की स्वतंत्रता छीन रहे हैं। सहकारिता के लिए प्रतिबद्ध इस आंदोलन के लोग ही सहकारिता को नष्ट कर रहे हैं। सहकारिता तो एक स्पिरिट है। सब मिलकर सहकारितापूर्वक खाने लगते हैं और आंदोलन को नष्ट कर देते हैं। समाजवाद को समाजवादी ही रोके हुए हैं। यों प्रधानमंत्री ने घोषणा कर दी है कि अब समाजवाद आ ही रहा है।

मैं एक कल्पना कर रहा हूँ। दिल्ली में फरमान जारी हो जायेगा - 'समाजवाद सारे देश के दौरे पर निकल रहा है। उसे सब जगह पहुँचाया जाये। उसके स्वागत और सुरक्षा का पूरा बन्दोबस्त किया जाये। एक सचिव दूसरे सचिव से कहेगा - 'लो, ये एक और वी.आई.पी. आ रहे हैं। अब इनका इन्तजाम करो। नाक में दम है।' कलेक्टरों को हुक्म चला जायेगा। कलेक्टर एस.डी.ओ. को लिखेगा, एस.डी.ओ. तहसीलदार को। पुलिस-दफ्तरों में फरमान पहुँचेंगे, समाजवाद की सुरक्षा की तैयारी करो। दफ्तरों में बड़े बाबू छोटे बाबू से कहेंगे - 'काहे हो तिवारी बाबू, एक कोई समाजवाद वाला कागज आया था न! जरा निकालो!' तिवारी बाबू कागज निकालकर देंगे। बड़े बाबू फिर से कहेंगे - 'अरे वह समाजवाद तो परसों ही निकल गया। कोई लेने नहीं गया स्टेशन। तिवारी बाबू, तुम कागज दबाकर रख लेते हो। बड़ी खराब आदत है तुम्हारी।' तमाम अफसर लोग चीफ-सेक्रेटरी से कहेंगे - 'सर, समाजवाद बाद में नहीं आ सकता? बात यह है कि हम उसकी सुरक्षा का इन्तजाम नहीं कर सकेंगे। पूरा फोर्स दंगे से निपटने में लगा है।' मुख्य सचिव दिल्ली लिख देगा - 'हम समाजवाद की सुरक्षा का इन्तजाम करने में असमर्थ हैं। उसका आना अभी मुल्तवी किया जाये।'

जिस शासन-व्यवस्था में समाजवाद के आगमन के कागज दब जायें और जो उसकी सुरक्षा की व्यवस्था न करे, उसके भरोसे समाजवाद लाना है तो ले आओ। मुझे खास ऐतराज भी नहीं है। जनता के द्वारा न आकर अगर समाजवाद दफ्तरों के द्वारा आ गया तो एक ऐतिहासिक घटना हो जायेगी।

गरीबों का जनतंत्र

कोई संयोग नहीं कि भयंकर गरीबी और तबाही के बावजूद भी आज भारत के पास दुनिया में तीसरे नम्बर की सबसे बड़ी आर्मी है। भारत, रूस और सऊदी अरब जैसे देशों के साथ, अपनी सुरक्षा में खर्च करनेवाला दुनिया का चौथे नम्बर का देश है। यही नहीं भारत के पास दुनिया के सबसे बड़े अर्द्धसैनिक बल हैं। जिसकी संख्या लगभग भारत की मुख्य फौज के बराबर है। 2016 में भारत का रक्षा बजट 51 अरब अमरीकी डॉलर था जो केन्द्र सरकर के कुल खर्च का 17 प्रतिशत था। जबकि इसी वर्ष तुलनात्मक रूप से स्वास्थ्य पर केवल 1.62 प्रतिशत और शिक्षा पर 4 प्रतिशत खर्च किया गया।

पिछले कई सालों से भारत दुनिया में हथियारों को खरीदने वाला सबसे बड़ा देश रहा है। स्टॉक होम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट के अनुसार 2011-15 में भारत ने 14 प्रतिशत हथियारों का आयात किया जो इसी अवधि में चीन तथा पाकिस्तान द्वारा आयात किये गये हथियारों से तीन गुना ज्यादा है। पिछले 15 सालों में भारत ने हथियारों की खरीद में 120 अरब अमरीकी डॉलर खर्च किये हैं।

दूसरी तरफ भारत में दुनिया के सबसे गरीब एक तिहाई लोग बसते हैं। जिनके पास बामुश्किल जिन्दा रहने भर के साधन ही मौजूद हैं। 6 प्रतिशत, लगभग 7.6 करोड़ भारतीयों को पीने का साफ पानी मयस्सर नहीं है और यह संख्या बढ़ती ही जा रही है।

2011 की जनगणना के अनुसार 49.8 या लगभग आधी जनसंख्या के पास शौचालय की सुविधा उपलब्ध नहीं है।

भारत में कुपोषण से मरने वाले बच्चों की संख्या दुनिया के किसी देश से भी ज्यादा है। एफएओ के अनुसार 2014 से 2016 में भारत में 19.4 करोड़ लोग कुपोषित थे जो दुनिया भर में कुपोषित लोगों के एक चौथाई हैं।

2016 में एक अनुमान के अनुसार टीवी के 10.4 लाख नये मरीजों में से 2.8 लाख मरीज भारत में हैं। 2010 में भारत में निमोनिया से मरनेवाले 5 साल से छोटे बच्चों की संख्या 3 लाख 50 हजार थी जबकि हैजे से हर साल लगभग 3 लाख बच्चों की जाने जाती हैं। यही नहीं भारत में सड़क हादसों में सालाना मरने वाले लोगों की संख्या भी दो लाख है। बजट बनानेवालों को इन जीती-जागती सच्चाइयों की परवाह नहीं है।

सरकारी स्कूलों में 10 लाख कम शिक्षक

पाँच दिसम्बर 2016 को मानव संसाधन विकास मंत्री द्वारा लोकसभा में दिये गये आँकड़ों के अनुसार, देश भर में सरकारी प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों में अधिक से अधिक क्रमशः 18 प्रतिशत और 15 प्रतिशत शिक्षकों के ही पद खाली हैं।

इसे दूसरी तरह से देखें तो सरकारी स्कूलों में शिक्षकों के 6 पदों में से 1 पद खाली है। इसे जोड़ कर देखें तो शिक्षकों के 10 लाख पद खाली हैं।

यह आँकड़ा देश भर में शिक्षकों के खाली पदों का औसत है। कुछ राज्यों में सभी पद भरे जा चुके हैं। लेकिन कुछ में तो आधे से ज्यादा पद खाली हैं। जिन राज्यों में ज्यादा पद खाली हैं, वहाँ शिक्षा का स्तर भी बहुत नीचा है। 2015-16 के शैक्षिक आँकड़ों के अनुसार भारत में 55 प्रतिशत से अधिक, लगभग 13 लाख 60 हजार बच्चे सरकारी स्कूलों में पढ़ते हैं।

झारखंड में शिक्षकों की सबसे ज्यादा कमी है। माध्यमिक स्तर पर 70 प्रतिशत तथा प्राथमिक स्तर पर 38 प्रतिशत शिक्षकों के पद खाली पड़े हैं।

उत्तर प्रदेश के कुल माध्यमिक स्कूलों में से आधों में शिक्षकों की कमी है। यही हाल बिहार तथा गुजरात का भी है।

सरकार के अनुसार शिक्षकों की भारी कमी का कारण अनियमित नियुक्ति, नियुक्तियों में गड़बड़ी होना और निश्चितता का न होना, विशेष विषयों के लिए विशेषज्ञ शिक्षकों का न होना तथा स्कूलों का कम होना है।

देश भर के सरकारी स्कूलों में शिक्षकों के 60 लाख पद हैं, जिनमें से लगभग प्राथमिक स्तर पर 9 लाख तथा माध्यमिक स्तर के 1 लाख पद खाली हैं।

हिन्दी भाषी बड़े राज्यों में बिहार, उत्तर प्रदेश, झारखंड जो 33.3 करोड़ लोगों का घर है, वहाँ संयुक्त रूप से, प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयों में एक चौथाई शिक्षकों की और जरूरत है।

केवल गोवा, उड़ीसा और सिक्किम में ही प्राथमिक शिक्षकों के पद खाली नहीं हैं

माध्यमिक स्तर पर मिजोरम और सिक्किम में शिक्षकों का कोई पद खाली नहीं है। भारत में केवल एक राज्य सिक्किम है, जहाँ प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर शिक्षक की कोई कमी नहीं है।

हिन्दी भाषी क्षेत्र में, उत्तर प्रदेश के बड़े शहरों तथा राष्ट्रीय क्षेत्र दिल्ली और चंडीगढ़ में शिक्षकों के पच्चीस प्रतिशत पद खाली हैं जो हिन्दी भाषी क्षेत्रों में शिक्षकों की भारी कमी को दिखाता है।

स्रोत--लोकसभा में 265 नम्बर का तारांकित प्रश्न, 5 दिसम्बर 2016।

-अभिषेक वागमारे

इंजीनियरिंग कॉलेज मालिक ने कैसे अध्यापकों का खून चूसा?

खून चूसना एक कहावत है, जिसका मतलब होता है ज्यादा काम लेना। लेकिन यहाँ जिस घटना का जिक्र है, उसमें सचमुच खून चूसने का काम किया गया। हुआ यह कि मेरठ के एक इंजीनियरिंग कॉलेज के मालिक की माँ बीमार थी। डॉक्टर ने मरीज के लिए खून की बोतल की जरूरत बतायी। मालिक की नजर तुरन्त अपने कॉलेज के अध्यापकों की सेहत पर गयी। उन्होंने ठीक स्वास्थ्य वाले अध्यापकों में से कुछ को चुनकर अपने पास बुलाया। उन्हें बताया कि आपको खून की एक-एक बोतल देनी पड़ेगी। अध्यापकों ने मना किया। एक अध्यापक ने तो कमजोरी के चलते खुद ही पिछले महीने एक बोतल खून चढ़वाया था। लेकिन मालिक ने खून की बोतल दान करने को जरूरी कर्तव्य से जोड़कर एक तरह से उन्हें धमकाया। नौकरी से निकाल दिये जाने के डर से उनमें से 4 अध्यापकों को खून की एक-एक बोतल देनी पड़ी।

यह वही कॉलेज है जहाँ पर 3-4 महीनों बाद अध्यापक और कर्मचारियों को 1 महीने का वेतन दिया जाता है और कोर्स खत्म होने के बाद बिना पूर्व सूचना के किसी भी अध्यापक को निकाल दिया जाता है। अगर कोई भी अध्यापक या कर्मचारी बीमार हो जाये तो उसके लिए छुट्टी की कोई व्यवस्था नहीं है। किसी दिन कॉलेज लेट पहुँचने या किसी कारणवश न आने पर उनका वेतन काट लिया जाता है। कम से कम भुगतान करके उनसे ज्यादा से ज्यादा काम लिया जाता है, फिर भी 6 महीने नौकरी रहेगी या नहीं इसकी कोई गारन्टी नहीं होती। कॉलेज में अध्यापकों और कर्मचारियों से ऐसे काम लिया जाता है, जैसे कि वे कोल्हू के बैल हों। इसी कॉलेज में एक अधेड़ व्यक्ति हैं जो सुबह 7 बजे से शाम 5 बजे तक चपरासी और रिसेप्शनिस्ट का काम सम्भालते हैं। रात को होस्टल की मेस में बर्तन साफ करते हैं। इतना सब करने के बाद उन्हें 5000 रुपये वेतन मिलता है। अगर कोई छुट्टी कर ली तो उसमें से भी कटौती।

आज कॉलेज मालिक मिनोटोर की तरह अध्यापकों का खून निचोड़ने के लिए आजाद हैं। अध्यापकों की एकता को तोड़ दिया गया है। बेरोजगारी के मारे नौजवान खून तो क्या अपने आपको भी गिरवी रखने के लिए लाचार हैं, बस उसके बदले उन्हें दो वक्त की रोटी मिल जाये। सरकार की तरफ से ऐसा कोई ठोस नियम नहीं है कि अध्यापकों के लिए न्यूनतम वेतन की व्यवस्था हो। उन्हें नौकरी से न निकाला जाये। यह कोई अपवाद नहीं। शिक्षा के निजीकरण का यही घिनौना चेहरा किसी भी जगह देखा जा सकता है।

पेट्रोल-डीजल के दाम फिर बढ़ाये गये

साल 2017 के पहले दिन में ही सरकार ने पेट्रोल और डीजल के दाम में बढ़ोत्तरी करके यह संकेत दे दिया कि पिछले साल की तरह महँगाई का चाबुक आम जनता पर लगातार पड़ता रहेगा। दिसम्बर 2016 में ही पेट्रोल के दाम में तीन बार तो डीजल के दाम में दो बार बढ़ोत्तरी की गयी थी। यह सिलसिला यहीं नहीं रुका, नये साल के पहले महीने में ही सरकार 2 बार इसके दाम बढ़ा चुकी है। 16 नवम्बर 2016 से पहले पेट्रोल की कीमत 66.01 रूपये प्रति लीटर और डीजल की 54.77 थी। तबसे लगातार कीमतों में बढ़ोत्तरी की गयी और आज पेट्रोल 71.13 रुपये और डीजल 59.02 रुपये प्रति लीटर है। 60 दिनों में ही पेट्रोल और डीजल की कीमतों में लगभग 5 रुपये की बढ़ोत्तरी की गयी।

हमेशा की तरह इस बार भी इसके पीछे अन्तरराष्ट्रीय तेल की कीमतों में उछाल ही मुख्य कारण बताया जा रहा है। लेकिन कमाल है कि अन्तरराष्ट्रीय तेल कीमतों में बढ़ोत्तरी से पेट्रोल और डीजल के दाम बढ़ा तो दिये जाते हैं। लेकिन अन्तरराष्ट्रीय तेल कीमतों में कमी के चलते घटाये नहीं जाते। मई 2014 में मोदी सरकार के सत्ता में आने से पहले अन्तरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमत 106.85 डॉलर प्रति बैरल थी और आज तेल की कीमत 53 डॉलर प्रति बैरल के आसपास है, दूसरी तरफ देश में मई 2014 में पेट्रोल की कीमत 71.44 रुपये प्रति लीटर थी और आज जब कच्चे तेल का दाम आधा है, फिर हमसे पेट्रोल और डीजल की उससे अधिक कीमत क्यों वसूली जा रही है? सब खर्चों को मिलाकर भी एक लीटर पेट्रोल की कीमत 40 रुपये से ज्यादा नहीं बैठती। मतलब साफ है कि वसूली जा रही कीमत और असली कीमत में दोगुने का फर्क है। राज्य और केन्द्र की सरकारों द्वारा कर के नाम पर जनता की जेब पर डाका डाला जा रहा है। पेट्रोल और डीजल की कीमतों में बढ़ोत्तरी से दूसरी सभी चीजों की कीमतें भी बढ़ जाती हैं जिसका खामियाजा आम जनता को भुगतना पड़ रहा है।

बच्चों की सुरक्षा को खतरा

19 जनवरी 2017 की सुबह उत्तर प्रदेश के एटा जिले में एक भीषण हादसा हुआ। इस दर्दनाक हादसे में 25 बच्चों की मौत हो गयी और कई अन्य घायल हो गये। प्रधानमंत्री ने अपने ट्विट के माध्यम से इस बस दुर्घटना पर खेद जताया। सच पूछो तो हमारे देश में बच्चों की सुरक्षा कभी भी राजनीतिक नुमाइन्दों के लिए चिन्ता का मामला नहीं रहा है। नेताओं के एजेंडों में बच्चों की सुरक्षा शामिल होती तो शायद देश भर में इस तरह की हृदय विदारक सड़क दुर्घटनाएँ नहीं होतीं।

गाँवों में रहने वाले छात्रों को स्कूल बस अलीगंज ले जा रही थी कि अचानक कोहरे की वजह से ट्रक से टक्कर हो गयी और इतनी बड़ी दुर्घटना हो गयी। ये दुर्घटना दो वाहन चालकों की लापरवाही का नतीजा नहीं है, बल्कि इसके पीछे गुनाहगारों की लम्बी फेहरिस्त है, जिसकी शिनाख्त जरूरी है। इस हादसे में हैरान करने वाली बात यह है कि जो स्कूल बस दुर्घटनाग्रस्त हुई थी, उसका पंजीकरण तक नहीं कराया गया था। ग्रामीण क्षेत्रों में खस्ताहाल बसों को अक्सर स्कूली छात्रों को ढोने के लिए लगा दिया जाता है। अगर कस्बों-देहातों में चल रहे पब्लिक स्कूलों की जाँच करायी जाये तो उनमें से अधिकांश निर्धारित मानकों का पालन करते हुए नहीं मिलेंगे। अक्सर देखा जाता है कि जिला प्रसाशन के आदेश को निजी स्कूल के प्रबंधक मानते ही नहीं हैं। राज्यों के शिक्षाधिकारियों की भी वे नहीं सुनते। न्यायालय के आदेश के बावजूद पब्लिक स्कूलों के मालिक न तो वाहनों की गुणवत्ता का ध्यान रखते हैं और न ही सेवा शर्तें पूरी करते हैं।

ये स्कूल ज्यादातर किसी स्थानीय नेता, नवधनाढ्य या ठेकेदार के होते हैं, जिनका शिक्षा से कोई सरोकार नहीं होता। इनका मकसद सिर्फ मुनाफाखोरी ही होती है। मुनाफाखोरी में वे इतने अंधे हो गये हैं कि पैसा बचाने के लिए जरूरी मानक कभी पूरे नहीं करते। अफसरों को घूस देकर स्कूल की मान्यता ले ली जाती है। जब सारा खेल रामभरोसे चल रहा है तो नतीजा इतना ही भयानक होगा। सरकार क्या कर रही है? क्या सरकार भी इन मुनाफाखोरों से मिली हुई है?

सरकार जिसे निजीकरण कहती है उसका मकसद मुनाफाखोरी है और अपने इस मकसद को पाने के लिए मासूमों की जिन्दगी से भी खेल रही है। अगर हम इन समस्याओं के लिए सरकार पर भरोसा कर रहे हैं तो यह हमारा भोलापन होगा, क्योंकि अगर सरकार को कुछ करना ही होता तो वह ऐसी पहली घटना के बाद ही बहुत कुछ कर चुकी होती।

अगर हम चाहतें हैं कि ऐसे दुर्घटनाएँ दुबारा न हों तो इसके लिए हमें खुद कुछ सोचना होगा और हमें एकजुट होकर खुद कुछ करना होगा। इस सवाल पर सोचना होगा कि निजी मुनाफे की व्यवस्था कैसे खत्म हो और सबके लिए समान शिक्षा का सपना कैसे पूरा हो।

--अनुज

हरियाणा के प्यासे गाँव

अभी हाल ही में केन्द्रीय पेयजल मंत्री ने लोकसभा में कहा कि मंत्रालय को आवंटित कुल बजट का तीन फीसदी शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराने के लिए खर्च हो रहा है और हम आने वाले कुछ वर्षों में ही 90 फीसदी ग्रामीण इलाकों में यह लक्ष्य पूरा कर लेंगे। सरकार के दूसरे दावों की तरह यह भी सच्चाई से मीलों दूर नजर आ रहा है। हरियाणा के मेवात जिले के ही 260 गाँवों में पीने योग्य पानी नहीं है। मजबूर होकर लोग आसपास के इलाकों से पानी के टैंकर खरीद कर गुजर-बसर कर रहे हैं। इनमें से करीब 20 गाँव तो ऐसे है जिनमे पिछले 30 सालों से पीने के पानी की एक बूँद तक नहीं है। वहाँ रहने वाले हजारों लोगों की रोजमर्रा की परेशानियों का हम अन्दाजा भी नहीं लगा सकते। इसी इलाके के एक गाँव के सरपंच बताते हैं कि अब गाँव में लड़कों के रिश्ते आने बन्द हो गये हैं और हजारों शादी योग्य नौजवान कुंवारे हैं। स्थानीय (फिरोज़पुर झिरका) विधायक नसीम अहमद ने कहा कि उन्होंने कई बार डेवलपमेंट बोर्ड की मीटिंग में पानी की किल्लत के मुद्दे को उठाया लेकिन अधिकारी सरकार के सामने झूठे आँकड़े पेश कर देते हैं और सारे पैसे खुद खा जाते हैं।

पहले भी सरकारें अनेकों परियोजनाएँ ला चुकी है, बदलती सरकारों के साथ ये परियोजनाएँ बदलती रही, नहीं बदली तो बस इन प्यासे गाँवों की तस्वीर। सरकार ने मेवात इलाके के 503 गाँवों के लिए लगभग 13 साल पहले राजीव गाँधी पेयजल परियोजना शुरू की थी जिसके तहत 425 करोड़ की भारी रकम आवंटित की गयी थी। आज स्थिति पहले से भी बदतर है। सवाल उठता है कि इन पैसों का क्या हुआ? पहले की तरह फिर से वादे किये जा रहे हैं। आज देश के अनेक राज्य सूखे और अकाल की चपेट में है, जिनकी तरफ से सरकार ने पूरी बेहयाई से मुह मोड़ लिया है। अगर ऐसा ही चलता रहा तो आने वाला समय भयावह होगा, राष्ट्रीय समस्या के तौर पर इसके समाधान के लिए प्राथमिकता में कठोर कदम उठाना आनिवार्य है।

साल दर साल गहराता पर्यावरण संकट!!!

2016 में दिवाली की रात के जश्न के बाद दिल्ली वालों के लिए अगले दिन का सूरज मानो काला था। दिल्ली की पहले से प्रदूषित हवा गन्दी हो गयी थी। शहर कई दिनों तक धुआँ मिली काली धुन्ध से ढका रहा और दिल्ली के साथ ही आस-पास के शहरों में भी अंधेरे और घुटन का माहौल बना रहा। यह जहरीली हवा फेफड़े के मरीजों के साथ-साथ आम लोगों के लिए भी दमघोटू थी। लोगों को हो रही परेशानियों की कोई इन्तेहा नहीं थी। लोग मुँह लपेटकर चलने को मजबूर थे। समस्या अधिक बढ़ जाने पर सरकार ने पर्यावरण प्रदूषण को खत्म करने के नाम पर शहर के कई हिस्सों में कृत्रिम रूप से पानी का छिड़काव मात्र करके, इतिश्री कर ली।

दिल्ली जैसा ही हाल भारत के सभी शहरों का है। देश के 20 सबसे प्रदूषित शहरों की सूची में दिल्ली सबसे ऊपर है। इसके बाद उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद, इलाहाबाद, कानपुर और बरेली इसके काफी करीब हैं, हरियाणा का फरीदाबाद, बिहार का पटना, झारखंड का झारिया, रांची, कुसुंदा व बस्ताकोला और राजस्थान के अलवर में वायु प्रदूषण का स्तर 10 पीएम स्केल पर 258 माइक्रोग्राम प्रति घनमीटर से 200 माइक्रोग्राम प्रति घनमीटर के बीच हैं। जो सामान्य से दस गुणा ज्यादा है।

हवा का संकट महानगरों को ही नहीं बल्कि पूरे देश को चपेट में ले चुका है। ग्रीनपीस द्वारा जारी की गयी रिपोर्ट में बताया गया है कि वायु प्रदूषण के मामले में सिर्फ दिल्ली की ही हालात गम्भीर नहीं हैं, बल्कि कुल 168 भारतीय शहरों में से एक भी विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लूएचओ) के मानकों पर खरा नहीं उतरता।

ग्रीनपीस इंडिया की रिपोर्ट के मुताबिक भारत में वायु प्रदूषण की समस्या जानलेवा बन चुकी है। वायु प्रदूषण के चलते पैदा हुई बीमारियों से हर साल 12,00,000 से अधिक लोग असामयिक मृत्यु का शिकार हो जाते हैं। हवा में घुले जहर का शिकार सबसे ज्यादा 5 साल से कम उम्र के बच्चे होते हैं। इसमें सबसे बड़ी संख्या महानगरों की झुग्गी-बस्तियों में रहने वाले बच्चों की है जिनके पास इस दमघोटू बीमारी से बचने का कोई साधन नहीं। ये बच्चे बचपन से ही दमा, अस्थमा जैसे रोगों का शिकार हो जाते हैं।

हवा में घुले जहर का मुख्य कारण गाड़ियों और फैक्ट्रियों से निकलने वाला धुआँ है। जिसे कम किया जा सकता है, बशर्ते मोटरकार और फैक्ट्री के मालिकों को पर्यावरण के नियमों को ध्यान में रखकर मुनाफे के कुछ हिस्से में कटौती करना पड़ेगी। लेकिन इन मालिकों को अपने मुनाफे में रत्तीभर कटौती भी मंजूर नहीं है, चाहे पर्यावरण और समाज का विनाश ही क्यों न हो जाये? लाखों-लाख जाने ही क्यों न चली जाये? भले ही धरती तबाह हो जाये?

पर्यावरण की बर्बादी की यह विनाशलीला केवल हमारे ही देश में नहीं चल रही है, बल्कि जहाँ भी मुनाफे की लूट पर टिकी पूँजीवादी सरकारें हैं, उन सबका हाल बुरा है।

विकास की इस अंधाधुन्ध दौड़ और मुनाफा कमाने की होड में पूँजीपति और देश की सरकारों ने एक साथ मिलकर पर्यावरण विनाश को न्यौता दिया है। कुछ मुट्ठी भर लोगों की अय्यासी और मुनाफे की हवस की कीमत जनता को अपनी जान देकर चुकानी पड़ रही है। अगर विकास की कीमत पर्यावरण का विनाश है तो हमें ऐसा विकास नहीं चाहिये।

भारत सरकार ने पर्यावरण बचाने के नाम पर स्वच्छ भारत अभियान , निर्मल गंगा, आदि दर्जनों अभियानों के प्रचार में ही अपनी पूरी कूवत लगा दी है। यहाँ तक की प्रचार के लिए प्रधानमंत्री मोदी जी भी हाथ में झाड़ू लिए सड़क तक उतर आये। प्रधानमंत्री जी ने पैसे के बल पर अपनी झाड़ू ली हुई तस्वीरों से अखबार भी पाट दिये। फिर भी देश का कोई भी शहर डबल्यूटीओ के पर्यावरण मानकों पर खरा नहीं उतर पाया।

पर्यावरण का संकट अब किसी शहर, राज्य और देश का संकट नहीं बल्कि आज का पर्यावरण संकट वैश्विक संकट के तौर उभर के सामने आया है। दुनिया भर के वैज्ञानिक पर्यावरण संकट को लेकर लगातार चिन्ता व्यक्त करने के साथ ही दुनिया के लोगों को आगाह भी करते रहे हैं। लेकिन पूरी दुनिया के मुनाफाखोर पूँजीपति इस बात को लगातार नजर अन्दाज करते आरहे हैं। हाल ही में अमरीका के जाने माने वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिंग ने भी पर्यावरण संकट को मानवता के लिए खतरा बताया है। अगर समय रहते पर्यावरण संकट को रोका न गया तो मानवता का विनाश तय है। फिदेल कास्त्रो ने की भाषा में कहें तो 'कल बहुत देर हो जायेगी'।

--सुनील कुमार

मूली उखाड़ने पर दलित को गोली मार दी

दुनिया के सबसे बड़े लोकतन्त्र में एक प्रधान के खेत में से मूली उखाड़ने पर दलित को गोली से मार दिया गया - मुजफ्फरनगर।

यही मूली किसी ब्राह्मण ने उखाड़ी होती तो - अरे पंडित जी आप क्यूँ परेशानी किये, बताते तो घर ही भिजवा देता।

यही मूली किसी धनी जाट ने उखाड़ी होती तो - अरे भाई इस बार खेत में मूली बोयी नहीं क्या? किसी बच्चे को भेज देते उखाड़ ले जाता।

यही मूली किसी गरीब जाट ने उखाड़ी होती तो - हाँ भाई जब काम था, तब तो तू पहले प्रधान के घर गया था। मूली उखाड़ने को हमारा खेत मिला। चल अभी तो ले जा, पर आगे से ध्यान रखना।

यही मूली किसी ऐसे दलित ने उखाड़ी होती जो इन प्रधान महाशय के घर बंधुआ होता तो - क्यूँ रे धूर्त, तेरी आदत नहीं सुधरी। चल, कुछ अच्छी-अच्छी मूली उखाड़ कर घर पहुँचा देना।

और जब यही मूली किसी ऐसे दलित ने उखाड़ी जो प्रधानजी के कहे में नहीं है तो- हो सकता है वह वोटिंग के समय किसी दूसरे प्रधान की दावत में शामिल हुआ हो, इस प्रधान जी द्वारा बाँटे गये देशी शराब के पव्वे लेने से मना कर दिया हो। तब यह महज मूली उखाड़ने की घटना जघन्य अपराध में बदल जाती है और उसको गोली मार दी जाती है।

उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले में एक दलित युवक ने विवादित जगह पर लगे एक पेड़ से दातून तोड़ ली। यह बात इलाके के ही कुछ कथित दबंगों को नागवार गुजरी। उन्होंने दलित युवक की गोली मारकर हत्या कर दी और गोली लगने के कारण दो और लोग घायल हो गये।

हालत यह है कि धर्म परिवर्तन के बाद भी दलितों को अत्याचार से मुक्ति नहीं मिल पा रही है। भारत के एक कैथोलिक चर्च ने पहली बार यह बात मानी है कि दलित ईसाई छुआछूत और भेदभाव का सामना कर रहे हैं।

इस तरह हमारे देश में सबसे ज्यादा शोषित तबके के निहत्थे व्यक्ति को चोर कहकर मार दिया जाता है। आज उनके पास खेत या नौकरी होती तो उन्हें गोली नहीं मारी जाती। यही फर्क है गरीबी और अमीरी का। जिनका कमाई के साधनों पर कब्जा है राज उन्हीं का है। भले ही संविधान में कितने ही खूबसूरत शब्दों में समानता की बात कही गयी हो।

सैकड़ों आदिवासी बच्चों के खून से लिखी विकास की दास्तान

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने महाराष्ट्र सरकार से राज्य सरकार द्वारा संचालित आवासीय स्कूलों में लगभग 500 आदिवासी लड़कियों की रहस्यमय हालत में मौत और यौन उत्पीड़न की रिपोर्ट पर अपनी स्थिति स्पष्ट करने को कहा है। आयोग ने कहा कि मिडिया में आयी खबरें ''स्कूल की नाबलिग छात्राओं की जिन्दगी और सम्मान के अधिकार का उल्लंधन किये जाने का सूचक हैं।''

पिछले दिनों मीड़िया में रिपोर्ट आयी थी कि स्कूल प्रशासकों ने माहवारी के दौरान या छुट्टी से वापसी पर नाबालिग लड़कियों की माहवारी का विवरण दर्ज किया और उनका गर्भधारण परीक्षण किया। ये सभी अनैतिक काम उनके अभिभावकों की अनुमति के बिना ही किये गये।

मामला तब प्रकाश में आया, जब एक लड़की ने दिवाली की छुट्टी में घर आने पर पेट दर्द की शिकायत की और पता चला कि उसका यौन उत्पीड़न किया गया। एक अन्य लड़की ने भी ऐसी ही शिकायत की। वह बुलघाना जिले के एक आवासीय स्कूल में पढ़ती थी, जहाँ बिना महिला अधीक्षक के चलने वाले छात्रावास में 70 लड़कियाँ रहती हैं।

महाराष्ट्र में सरकार द्वारा संचालित या सहायता प्राप्त 1100 आवासीय स्कूल हैं जिनमें 2,30,000 छात्र और 1,60,000 छात्राएँ पढ़ती हैं। आयोग ने कहा कि पिछले 15 वर्षों के दौरान 1500 बच्चे, जिनमें 700 छात्राएँ हैं, रहस्यमय मौत के शिकार हुए, जिसके पीछे यौन उत्पीड़न की आशंका है।

सरकार ने इस दिशा में, पूरी तरह उपेक्षा और लापरवाही बरती हैं। आयोग ने इस सम्बंध में सरकार को 10 अक्टूबर 2016 को नोटिस भेजा और 10 नवम्बर को स्मरण पत्र दिया, लेकिन राज्य सरकार ने दोनों का कोई जवाब नहीं दिया।

सैनिकों के खुलासे के मायने

10 जनवरी 2017 को सैनिक तेज बहादुर यादव ने अपने फेसबुक पर एक वीडियो पोस्ट कर जवानों को मिलने वाले खाने की गुणवत्ता पर सवाल खड़ा किया और वरिष्ठ अधिकारियों पर कई तरह के आरोप लगाये। उस वीडियो में तेज बहादुर ने आरोप लगाते हुए कहा था, "देशवासियों मैं आपसे अनुरोध करना चाहता हूँ, हम लोग सुबह 6 बजे से शाम 5 बजे तक लगतार 11 घंटे इस बर्फ में खड़े होकर ड्यूटी करते हैं। कितनी भी बर्फ हो, बारिश हो, तूफान हो इन्हीं हालातों में हम ड्यूटी कर रहे हैं। फोटो में हम आपको बहुत अच्छे लग रहे हैं मगर हमारी क्या स्थिति है, ये न मीडिया दिखाता है, न मिनिस्टर सुनता है। कोई भी सरकार आयी, हमारे हालात वही हैं। मैं इसके बाद 3 वीडियो भेजूँगा जिसको मैं चाहता हूँ कि आप दिखायें कि हमारे अधिकारी हमारे साथ कितना अत्याचार व अन्याय करते हैं। क्योंकि सरकार हर चीज, हर सामान हमको देती है, लेकिन उच्च अधिकारी सब बेचकर खा जाते हैं, हमारे को कुछ नहीं मिलता। सुबह के नाश्ते में सिर्फ पराठे और चाय, दोपहर के खाने की दाल में सिर्फ हल्दी और नमक होता है, रोटियाँ भी जली होती हैं"। यह सिर्फ एक वीडियो की कहानी है, इसी तरह उसने 3 और वीडियो पोस्ट किये थे।

तेज बहादुर के इस वीडियो को 24 घंटे के भीतर 17 लाख से ज्यादा बार देखा गया और 1 लाख से अधिक बार इसे शेयर किया गया। उसके बाद सीआरपीएफ जवान जीत सिंह ने एक वीडियो शेयर कर आरोप लगाया कि सरकार पैरामिल्ट्री फोर्स के साथ सौतेला व्यवहार कर रही है। जवान जीत सिंह ने कहा कि जब सारी सेना का एक ही मकसद है तो फिर सुविधाओं के नजरिये से आर्मी और पैरामिल्ट्री में भेदभाव क्यों? इसी तरह कई सैनिकों ने वीडियो के माध्यम से अपना दर्द बयान किया। सेना के अधिकारी सकते में आ गये। देश में उनकी बदनामी होने लगी। बीएसएफ अधिकारियों ने बताया की तेज बहादुर जहाँ पर तैनात है, वह बीएसएफ का ट्रांजिस्ट पोस्ट है। इसका ऑपरेशनल कन्ट्रोल सेना के पास है और वह राशन मुहय्या कराती है और उन्होंने कहा कि इस तरह की पोस्ट पर अच्छी सुविधाएँ नहीं होती हैं। बीएसएफ के अधिकारी ने आरोप लगाया कि इस जवान की मानसिक हालत ठीक नहीं हैं और उसका ट्रान्सफर कर दिया गया। उस पर आरोप लगाये गये कि वह कई बार नियम तोड़ चुका है और जेल भी जा चुका है। अधिकारियों के आरोप का जवाब देते हुए जवान ने कहा कि अगर मैं गलत था तो मुझे गोल्ड मैडल और 16 बार अवार्ड क्यों दिया गया। सेना प्रमुख जनरल बिपिन रावत ने कहा कि सोशल मीडिया में शिकायत करने वाले जवानों को सजा भी मिल सकती है।

कैग-2010 की रिपोर्ट पर नजर डालें तो पता चलता हैं कि सेना को जो खाना परोसा जाता है उसकी गुणवत्ता मानक के अनुसार नहीं होती है और सामानों का स्टॉक सही तरीके से नहीं रखा जाता है। दाल और चाय की आपूर्ति करने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के कई उपक्रम, जिन्हें ठेका दिया गया था, आपूर्ति करने में असफल रहे। इसलिए इन्हें स्थानीय स्तर पर मँगाना पड़ा। दाल और चाय की आपूर्ति नहीं हुई। इस कमी को पूरा करने के लिए सेना को हर साल 30.6 करोड़ रुपये की अतिरिक्त राशि खर्च करनी पड़ी।

अधिकारी एफसीआई से गेहूँ खरीदते हैं और उसे पिसाकर आटा तैयार करवाते हैं। यह बाजार में उपलब्ध ब्रान्डेड आटे की तुलना में अधिक खर्चीला होता है। इसके चलते सेना प्रत्येक वर्ष 25 करोड़ रुपये का अतिरिक्त खर्च वहन कर रही है। 68 प्रतिशत जवान उनके परोसे जा रहे खाने को असन्तोषजनक या फिर निम्न स्तर का मानते हैं। आटा, चीनी, चावल, चाय, दाल तेल आदि का उपयोग 6 से 28 महीने की निर्धारित समय सीमा समाप्ति के बाद भी जारी रहता है। सेना की तीन चयनित कमानों में 110 से 222 विक्रेताओं के पंजीकरण के बावजूद, 46 प्रतिशत मामलों में खरीद दो कोटेशनों के आधार पर की गयी। 36 प्रतिशत मामलों में ठेके मात्र एकल कोटेशन के आधार पर दिये गये थे। इससे साफ हैं कि सेना के अधिकारी अपने मनचाहे विक्रेताओं से साँठ-गाँठ करते हैं और उन्हें ही ठेका देते हैं।

पिछले दिनों देशभक्ति का उन्माद फैलाने के लिए सैनिकों के त्याग और बलिदान की विरूदावली बढ़-चढ़कर गायी गयी। लेकिन ज्यों ही आम सैनिकों की दुर्दशा का खुलासा हुआ, देशभक्ति की आदर्श-छवि (प्रोटोटाइप) को धूमिल करने की मुहीम शुरू हो गयी। लेकिन सच तो सच है।

--दिनेश मौर्या

किसान आत्महत्या में वृद्धि

चौधरी चरण सिंह ने कहा था की " देश की समृद्धि का रास्ता गाँवों के खेतों और खलिहानों से होकर जाता है।" भारत में आज भी 60 फीसदी लोग खेती पर निर्भर हैं। खेती को मिलने वाली रियायतों में कमी के चलते किसानों की आत्महत्या में लगातार वृद्धि हो रही है। 1995 से 2015 के बीच 3 लाख से भी ज्यादा किसानों ने आत्महत्या की हैं। यानी हर 41 वे मिनट में एक किसान आत्महत्या कर लेता है।

2014 में 12360 किसानों ने आत्महत्या की थी, इनमें से 5650 किसान के पास खुद की जमीन थी और 6710 खेत मजदूर थे। 2015 में किसानों की आत्महत्या की घटनाएं बढ़कर 12602 हो गयी। 2014 की तुलना में 2015 में आत्महत्या में 2 फीसदी की बढ़ात्तरी हुई।

राष्ट्रीय अपराध रेकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार 2014-15, दोनों सालों में देश सूखा प्रभावित रहा जिसके कारण 87 फीसदी मौत केवल 7 राज्यों महाराष्ट्र, कर्नाटक, तेलांगना, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु में हुई। किसानों की कुल आत्महत्याओं का एक तिहाई केवल महाराष्ट्र में दर्ज हुआ।

सरकार और उसका हितैषी मीडिया किसानों की आत्महत्याओं का कारण कर्ज के बजाय किसानों की दूसरी निजी समस्याएँ बताता है। लेकिन राष्ट्रीय अपराध रेकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार 2015 में कर्ज न चुका पाने के कारण की गयीं आत्महत्याओं में 80 फीसदी किसान बैकों के कर्जदार थे। किसान आत्महत्या के प्रमुख कारण कर्ज तथा सरकार की किसानों के प्रति दमनकारी नीतियाँ हैं।

खेती की लाजमी जरूरतों को निजी हाथों में सौंप दिया गया है। इससे खेती के औजार, खाद, बीज और कीटनाशकों के बढ़ते दाम किसानों की कमर तोड़ रहे हैं। पिछले दशक में किसानों के कर्ज में 22 फीसदी की बढ़ोत्तरी हुई। चंडीगढ़ के ग्रामीण और औद्धयोगिक विकास अनुसंधान केन्द्र की रिपोर्ट के अनुसार पंजाब में 96 फीसदी ग्रामीण परिवारों की आमदनी उनके खर्च की तुलना में कम है। और 98 फीसदी परिवार कर्ज के नीचे दबे हैं।

सितम्बर 2016 में सरकार ने न्यूनतम मजदूरी को 246 से बढ़ाकर 351 रुपये कर दिया। लेकिन खेत मजदूरों को इससे कोई फायदा नहीं पहुँचा। जबकि 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में 50 फीसदी से ज्यादा किसान भूमि हीन हैं। जिन्हें बढ़ी मजदूरी से कोई फायदा नहीं मिला।

आर्थिक सर्वेक्षण 2016 के मुताबिक 17 राज्यों में किसान परिवारों की औसत मासिक आय 1667 रुपये से भी कम है। मतलब, किसानों की रोजाना की आमदनी 56 रुपये से भी कम है।

विश्व व्यापार संगठन ने सरकार को हिदायत दे रखी है कि फसलों के लागत मूल्य के मुकाबले खरीद मूल्य 10 फीसदी से ज्यादा न हो। यह किसानों की आर्थिक कंगाली का एक फतवा ही तो है। और हमारी सरकार इसे हूबहू लागू कर रही है। देश में मौजूद निजी कम्पनियाँ अपने छोटे मोटे सामानों का भी दाम खुद तय करती हैं लेकिन चिलचिलाती धूप और कड़ाके की ठंड में काम करने वाले किसानों के पास फसल के दाम खुद तय करने का हक नहीं है। कभी-कभी तो फसल के दाम इतने गिरा दिये जाते हैं कि किसान मजबूरीवश फसल को खेत में सड़ने के लिए छोड़ देते हैं।

मौजूदा व्यवस्था ऐसी हालात तैयार कर देती है कि उम्मीद के सारे रास्ते बन्द हो जाते हैं और किसान के सामने आत्महत्या जैसा भयावह कदम उठाने के अलावा कोई ओर रास्ता नहीं रह जाता। किसान की आत्महत्या व्यवस्था के खिलाफ एक तरह का मौन विरोध है। यह समूची व्यवस्था पर सवाल खड़े करता है। सरकार झूठे दावों का सहारा लेकर खेती की गुलाबी तस्वीर पेश करती है। चारों तरफ विकास का ढ़ोल पीटा जारहा है। इस ढ़ोल की आवाज में धरती के बेटे की आवाज कहीं खो गयी है

क्रुद्ध पीढ़ी चाहिए

--निजार कब्बानी

हम एक गुस्सैल पीढ़ी चाहते हैं
हम चाहते हैं ऐसी पीढ़ी
जो क्षितिज का निर्माण करेगी
जो इतिहास को
उसकी जड़ों से खोद निकाले
गहराई म. दबे विचारों को बाहर निकाले
हम चाहते हैं ऐसी भावी पीढ़ी
जो विविधताओं से भरपूर हो
जो गलतियों को क्षमा न करे
जो झुके नहीं
पाखंड से जिसका पाला तक न पड़ा हो
हम चाहते हैं एक ऐसी पीढ़ी
जिसम. हों नेतृत्व करने वाले
असाधारण लोग

देश कहाँ जा रहा है?

हम गरीबी में सहारा अफ्रिका से बहुत आगे, दुनिया में पहले नम्बर पर हैं। हम किसानों की आत्महत्या के मामलें में दुनिया में पहले नम्बर पर हैं, खैर मनाइये कि अब तक इसके लिए कोई वैश्विक पैमाना नहीं बना है।

हम मानव तस्करी, बँधुवा मजदूरी, गुलामी के मामले में दुनिया में पहले नम्बर पर हैं।

हम अशिक्षा में भी सबसे ऊपर पहुँचने के करीब हैं। हमारे बेरोजगारी के आँकड़े दिमाग चकरा देने वाले थे ही, अब हमें भारत को कैश लैस करने की पहलकदमी को धन्यवाद देना चाहिए, क्योंकि इसके चलते जितने लोगों ने नौकरियाँ गवाई हैं उसे देखते हुए जरूर ही हम यहाँ भी अपना पहला नम्बर पा जायेंगें।

हमारे 80 फीसदी स्नातकों का बेरोजगार होना हमारी शिक्षा की गुणवत्ता को बताता है।

भ्रष्टाचार हमारे समाज में हर स्तर पर न केवल स्वीकार्य है, बल्कि प्रेरक भी है।

मुख्यतः हमारे राजनेता और अधिकारी भ्रष्टाचार में लिप्त हैं और न्यायालय उन्हें पकड़ने की कोशिश कर रहा है।

हमारे अन्दर बिल्कुल सहनशक्ति नहीं है। भष्ट्राचार और झूठ को सहन करने की तो है लेकिन इसके खिलाफ आवाज उठाने वालों को हम बर्दाश्त नहीं करते। ऐसे लोगों को फर्जी मुकदमों में फँसाना, यहाँ तक कि जान से मार देना भी आये दिन की घटना है।

धर्म को लेकर हमारे विचार लोगों को आपस में जोड़ने वाले, दिलों को दिलों से मिलाने वाले नहीं हैं बल्कि लोगों को आपस में बाँटने वाले हैं, प्रेम से समझा कर सहमत बनाने वाले नहीं, निर्दयता से लागू किये जाने वाले हैं।

हम देश के प्रति वफादारी और किसी राजनीतिक पार्टी के प्रति वफादारी को लेकर दुविधा में हैं। देशभक्ति किसी पार्टी विशेष की भक्ति का पर्याय बनती जा रही है। किसी भी मुद्दे पर असहमति के चलते हम पर राष्ट्रद्रोही और देशद्रोही होने का लेबल लग जाता हैं।

राजनेताओं को हम इसलिए चुनते हैं कि वे हमारी जाति धर्म के हैं, बाकि चीजों की हम कोई परवाह नहीं करते।

ज्यादातर नेताओं का भ्रष्ट, अनपढ़ और आपराधिक रिकॉर्ड (जिसमें हत्या भी शामिल है।) वाला होना भी हमारे लिये कोई मतलब नहीं रखता। हम उन्हें मजे से चुन लेते हैं।

इनसानी जीवन की हमारी देश में कोई खास कीमत नहीं, बल्कि कोई कीमत ही नहीं है। 2005 से 2015 तक 3,00,000 किसान आत्महत्या कर चुकें हैं।

किसी की परवाह न करते हुए कानून तोड़ना हमारे देश में अपनी हैसियत बताने का और प्रतिष्ठा का प्रतीक है, इसे बड़ा और महान काम माना जाता है। हजारों लोग गरमी, जाड़ा, बरसात से या मामूली बीमारीयों से मर जाते हैं। सड़क दुर्घटना और अब रेल दुर्घटना में भी आये दिन लोग मरते रहते हैं।

यह सिद्वान्त दिनों-दिन मजबूत होता जा रहा है कि कुछ लोग दूसरे लोगों से अधिक योग्य हैं, सभी लोग बराबर हैं लेकिन कुछ लोग ज्यादा बराबर हैं।

विचाराधीन कैदियों को पुलिस द्वारा मार दिया जाना सामान्य बात हैं। फर्जी मुठभेड़ में मौत होने पर मीडिया पुलिस की प्रशंसा करती है। और उन्हें एन्काउन्टर स्पेशलिस्ट की उपाधि देती है। हमारे यहाँ आये दिन होने वाले बलात्कार, हत्या और लूटपाट के आँकड़ों की तुलना युद्व क्षेत्र से की जा सकती है।

उत्पादकता, गुणवत्ता और उद्योग के मामले में हम बांग्लादेश से भी अपनी तुलना नहीं कर सकते, लेकिन हम अपनी तुलना चीन से करने को लालायित रहते हैं। सबसे बड़ी बात यह कि हम इन कड़वी सच्चाइयों को स्वीकार करने के बजाय इनकी ओर से आँख-कान बन्द रखते हैं। न स्वीकारेगें, न बदलेंगे।

मैं अकेला भटकता रहा
सल्फयूरस हाइड्रोकार्बन के धुएँ के
बादल की तरह
पानी के भाप से नहीं बना जो
जैसे कवि कल्पना करता है,
आँसू से भर गयी मेरी आँखें,
मेरा शिल्प गायब हो गया
और मेरी वीणा का संगीत मौन हो गया
सूँघा तो महसूस किया वह गन्ध,
जो आ रही थी सुलगते टायरों के
एक ऊँचे टीले, एक पहाड़ से
उस झील के किनारे से,
जहाँ पेड़ नहीं उगते
जर्जर सर्किट बोर्ड के कचरा कुण्ड में।
नीचे एक रंग विरंगा सोता
मखमली घास पर
मोतीनुमा बुलबुले उठाता
चमकता रहा हर तरह के रंग में
हालाँकि बिल्कुल नजर नहीं आते
मेरी आँखों को बदरंग
एक अरब तरीके पुनर्संयोंजन के
जिस पर पचास करोड़ साल पहले के
कैम्ब्रियाई दौर से आज तक
सोचा नहीं था।
अछूता कैसे रह सकता हूँ उस दिन मैं
मेरा हृदय, मेरा फेफड़ा, मेरा डीएनए।
(वर्डसवर्थ की अमर रचना का भावनुवाद)

मुठभेड़ और हिरासत में मौत : खौफनाक हकीकत

मध्य प्रदेश में सिमी से जुड़े आठ ''कथित'' आतंकवादियों और ओडिसा में 25 ''संदिग्ध'' माओवादियों की ''पुलिस मुठभेड़ में हत्या'' ने मौजूदा शासन व्यवस्था में मानवाधिकार और नागरिक स्वतंत्रता की हालत को एक बार फिर खुर्दबीन के नीचे ला दिया है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के आँकड़े दिखाते हैं कि हाल के वर्षो में हालत बद से बदतर हुए हैं, पिछले सात वर्षो के दौरान मानवाधिकार आयोग द्वार दर्ज मामलों की संख्या लगातार बढ़ती गयी है। 2008-09 में 90,946 मामले दर्ज किये गये थे जो 2015-16 में बढ़कर 1,05,664 हो गये। एक तरफ जहाँ ये आँकड़े आयोग के प्रति बढ़ते भरोसे को दिखाते हैं वहीं इनसे जाहिर होता है कि हिंसा की घटनाओं पर कोई रोक नहीं लगी है।

मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष और भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एच एल दत्तू द्वारा जारी एक रिपोर्ट यह दर्शाती है कि अक्टूबर 2015 से सितम्बर 2016 के बीच मानवाधिकार अयोग ने पुलिस के खिलाफ मानवाधिकार हनन के 32,498 मामलें दर्ज किये, जिनमें 206 मामले मुठभेड़ के थे। छत्तीसगढ़ मुठभेड़ के मामले में सबसे ऊपर था जहाँ 66 घटनाएँ हुई, उसके बाद असम में 43, झारखण्ड में 15 और ओड़िसा में 10 मुठभेड़ के मामले दर्ज हुए। अर्द्धसैनिक बलों द्वारा मुठभेड़ के मामलों में पश्चिम बंगाल सबसे ऊपर या जहाँ 11 मामले दर्ज हुए, जबकि हिरासत में मौत के मामले में उत्तर-प्रदेश सबसे आगे रहा जहाँ न्यायिक हिरासत में 401 और पुलिस हिरासत में 27 लोगों की मौत हुई।

क्राइम रिकार्ड ब्यूरों के आँकड़े दर्शाते हैं कि पुलिस द्वारा कानून की अवहेलना के 47,774 मामले 2014 में दर्ज हुए थे जो 2015 में बढ़कर 54,916 हो गये, जबकि दोनों ही साल 20,000 मामले सही नहीं पाये गये।

भारी संख्या में मामले दर्ज होना एक बात है लेकिन पिछले पाँच सालों में तहकिकात के बाद सचमुच दर्ज मामले बहुत ही कम रहे हैं। जाँच के बाद मुकदमे के लिए भेजे गये मामले 2011 में 913 थे जो 2015 में 4,367 हो गये। यानी कुल दर्ज मामलों की तुलना में यह संख्या 10 फीसदी से भी कम है।

इन पाँच वर्षो के दौरान पुलिस को सजा मिलने का मामला बेहद कम (2011 में 47 और 2015 में 25) रहा है, जबकि इन पाँच वर्षो में 1000 से अधिक लोगों पर मुकदमा चलाया गया था।

बीबीसी ने हाल ही में ह्यूमन राइट वाच के हवाले से एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसके मुताबिक 2010 से 2015 के बीच लगभग 600 लोगों की हिरासत में मौत हुई, इनमें से एक भी मामले में पुलिस को सजा नहीं हुई।

अक्टूबर में दो कुख्यात मुठभेड़ की घटनाओं के ठीक बाद, 2 नवम्बर को रामनाथ गोयनका पत्रकारिता पुरस्कार समारोह में बोलते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा था कि हर पीढी को आपातकाल की घटनाओं को याद रखना चहिए, ताकि आने वाले नेता उस तरह के पाप को दुहरा न सकें। कैसी बिडम्बना है कि इस तरह के मोहक वचन बोलने वाले प्रधानमंत्री के शासनकाल में मानवाधिकार की हत्या के मामले पिछले सभी रेकार्ड टूट रहे हैं। सच तो यह है, आज के हालात को देखते हुए आपातकाल के अत्याचार कहीं नहीं ठहरते। मानवाधिकार आयोग का काम सिर्फ लाशों की गिनती करना भर रह गया है। किसी भी मामलें में अपराधी पुलिस कर्मियों को सजा न मिलना इस बात का प्रमाण है कि यह देश पुलिस राज में बदल चुका है, जहाँ कानून और संविधान महज सजावट की वस्तु भर हैं।

एक फीसदी धनाढ्यों के पास देश की साठ फीसदी दौलत

हमारे देश की एक फीसदी आबादी, देश की 58.4 फीसदी सम्पत्ति की मालिक है। क्रेडिट सुइस समूह नामक वित्तीय सेवा कम्पनी जिसका कार्यालय ज्यूरिख में है, वह 2010 से हर साल सम्पत्ति के मालिकों के बारे में रिपोर्ट प्रकाशित करती है। ताजा रिपोर्ट की खास बातें-

1. दुनिया भर में रूस के बाद भारत में ही गरीबी और अमीरी के बीच की खाई सबसे चौड़ी है।

2. सम्पत्ति के बटवारे में विषमता की यह खाई पिछले दो वर्षों में काफी गहरी हुई है। 2014 में एक फीसदी घनाढ्यों के पास देश की 49 फीसदी दौलत थी, जो 2016 में बढ़कर 58.4 फीसदी ही गयी।

3. निचले पायदान पर खड़ी 50 फीसदी आबादीं के पास देश की कुल दौलत में सिर्फ 2.1 फीसदी हिस्सेदारी है।

4. ऊपरी पायदान पर खड़े 10 फीसदी देश की 80.7 फीसदी दौलत के मलिक हैं।

इन आँकड़ों का क्या मतलब है?

1. विकास का फायदा मुट्ठीभर घनाढ्यों तक ही पहुँच रहा है। गरीबों से छीनकर अमीरों की तिजोरी भरने वाली नीतियों को विकास का नाम दिया जा रहा है।

2. केन्द्र और राज्य सरकारों को ऐसी नीतियाँ लागू करने में रूचि नहीं है जिनसे गरीबों को उनकी मेहनत का उचित फल मिले।

3. देश में एक तरफ मुट्ठी भर लोगों के लिए स्वर्ग और दूसरी तरफ बहुसंख्य मेहनतकश जनता के लिए साक्षात नरक का निर्माण किया जा रहा है।

प्युर्तो रिको की आजादी के योद्धा रिवेरा

--विक्रम प्रताप

इस साल 17 मई को ऑस्कर लोपेज रिवेरा आजाद कर दिये जायेंगे। वे प्युर्तो रिको की आजादी के जननायक हैं और इस समय अमरीका की जेल में कैद हैं। प्युर्तो रिको दक्षिणी और उत्तरी अमरीकी महाद्वीपों के बीच क्यूबा के पास एक कैरिबियाई देश है जो समुद्र के बीच एक बेहद सुन्दर द्वीप है। इसका कुल क्षेत्रफल 9 हजार वर्ग किलोमीटर है और यहाँ 37 लाख लोग निवास करते हैं।

लोपेज रिवेरा का जन्म प्युर्तो रिको में 1943 के जाड़े के दिनों में हुआ था। वे वियतनाम युद्ध में अमरीका की ओर से शामिल हुए थे। युद्ध से लौटने के बाद उन्होने प्युर्तो रिको की जनता के संघर्षों में हिस्सेदारी की। उन्होंने नागरिक नाफरमानी के आंदोलन में भी सक्रिय भाग लिया।

1976 में रिवेरा ने राष्ट्रीय मुक्ति के लिए लड़ने वाले सशस्त्र बल (एएफएनयेल) की सदस्यता ले ली। यह उन दिनों एक लड़ाका संगठन था। जो बेहद गोपनीय तरीके से काम करता था। उस समय प्युर्तो रिको देश अमरीका की नव उपनिवेशिक गुलामी के अधीन था। राष्ट्र की जनता अमरीकी गुलामी से मुक्ति चाहती थी। एएफएनएल संगठन अमरीका के खिलाफ युद्ध में जनता की अगुआई करता था। इसके सदस्यों ने अमरीकी सैनिकों के ऊपर बम बरसाये और संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए अखबारों में खबरें छपवायी। उन्होंने जनता से अपील की कि "अमरीकी पूँजीवादी एकाधिकार'' को चुनौती देने के लिए वह उनका साथ दे।

एएफएनएल में सक्रिय भाग लेने के जुर्म में 1981 में रिवेरा को गिरफ्तार कर लिया गया। अमरीकी संस्था फेडरल ब्यूरो ऑफ इन्वेस्टीगेशन (एफबीआई) ने उनपर "षडयंत्र करने का आरोप लगाया। एफबीआई खुद में एक आपराधिक संस्था है जो अमरीकी सरकार के नियंत्रण में दमन चक्र चलाती है। इसके माध्यम से अमरीकी सरकार अपने विरोधियों का खात्मा करती है। अमरीकी सरकार प्युर्तो रिको की आजादी के संघर्ष को दबा देना चाहती थी। लोपेज रिवेरा की कार्रवाइयों से बौखलायी अमरीकी सरकार ने उन्हें जेल में डाल दिया। 1949 के जिनेवा सम्मेलन के पहले मसविदा में युद्ध अपराधियों को सुरक्षा प्रदान की गयी है। रिवेरा नव-औपनिवेशिक सत्ता के खिलाफ लड़ते हुए गिरफ्तार हुए थे। उन्हें जिनेवा सम्मेलन की मसविदा के तहत कानूनी सुरक्षा मिलनी चाहिए थी। लेकिन अमरीका ने इसके खिलाफ कदम उठाते हुए उन्हें 55 साल के लिए कैद में डाल दिया। जेल से भाग निकालने के आरोप में उनकी सजा को बढ़ाकर 70 साल कर दिया गया।

1999 में अमरीकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने उन्हें माफीनामा देने का प्रस्ताव रखा। लोपेज रिवेरा ने इनकार कर दिया। वे साम्राज्यवादियों से किसी भी तरह की रहमदिली की उम्मीद नहीं करते थे। वे जानते थे कि माफीनामे के बदले उन्हें अपनी आत्मा अमरीका के हाथों बेच देनी पड़ेगी। दुनिया भर की इंसाफ-पसन्द जनता ने रिवेरा को जेल से छुड़ाने के लिए कई सालों तक संघर्ष किया। रिवेरा की रिहाई के लिए प्युर्तो रिको की स्वतन्त्रता पार्टी, लोकप्रिय जनवादी पार्टी, नयी प्रगतिशील पार्टी और इस द्वीप के सामाजिक संगठनों ने मिलकर प्रयास किया।

18 जून 2012 को संयुक्त राष्ट्र की औपनिवेशिकरण समिति ने एक प्रस्ताव पास किया जिसे क्यूबा ने पेश किया था। इस प्रस्ताव में प्युर्तो रिको की आजादी के अधिकार और आत्म-निर्णय को चिन्हित किया गया था। इसमें माँग की गयी थी कि अमरीका को चाहिए कि वह आजादी के योद्धाओं को जेल से रिहा कर दे। भारी दबाव के चलते अमरीका को झुकना पड़ा और जनता के जुझारू संघर्ष ने रंग दिखाया। लोपेज रिवेरा को 17 मई 2017 को रिहा कर दिया जायेगा। रिवेरा की संघर्षों भरी जिन्दगी और उनका अदम्य साहस दुनिया भर के इंसाफ पसन्द लोगों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बन गया है।

1898 में प्युर्तो रिको की जनता ने स्पेनी उपनिवेश से आजादी हासिल की थी। लेकिन आज वह अमरीका का नव उपनिवेश है। अमरीका की गुलामी के खिलाफ वहाँ की जनता का संघर्ष अभी जारी है।

खबर है
कि जनता ने सरकार का विश्वास
खो दिया है,
क्या सरकार के लिए
यह मुनासिब नहीं
कि वह इस जनता को भंग कर दे
और अपने लिए
कोई दूसरी जनता चुन ले?

--बर्तोल्त ब्रेख्त

तमिलनाडु में भयावह सूखा और जलीकट्टू का तमाशा

--प्रवीण कुमार

पिछले दिनों अखबारों और टीवी चैनलों पर जिस तरह जलीकट्टू का तमाशा छाया रहा वह बेहद अश्लील, फरेबी और डरावना था। खासतौर से उनके लिए, जिन्हें सच्ची पत्रकारिता करने वाले कुछ लोगों के चलते यह पता लग गया था कि तमिलनाडु की जनता भयंकर सूखे का सामना कर रही है। जलीकट्टू से जुड़ी खबरों को जिस तरह दिखाया जा रहा था, उससे लग रहा था जैसे ओछे छुटभैये नेताओं की अगुवाई वाले गिरोह, कुछ बहकाये हुए अहमक तमिल नौजवानों को साथ मिलाकर, केन्द्र की सत्ताधारी पार्टी के आशीर्वाद से पूरे समाज को बर्बरता और मनमानी के अंधेरे दौर में घसीटे ले जा रहे हों। इसी दौरान इस वाहियात खेल में कई नौजवानों के मरने की खबरें भी आयीं।

ऐसा लगता है आज क्रूरता और मक्कारी का दूसरा नाम बन गये लोकतंत्र के लिए उसका चौथा पाया 'मीडिया' बेहद जरुरी बन गया है। इसकी हुल्लड़बाज ताकतें, अंधेरे दौर की और जाने वाली रहगुजर के दोनों ओर खड़ी होकर, बेहद नायाब तरीकों से, इन गिरोहों की हौसला अफजाई करती नजर आयी। इस हुल्लड़बाजी से बदहवास हो चुके आम लोगों के लिए जलीकट्टू तमिलनाडु का दूसरा नाम बन गया।

जलीकट्टू के पक्ष में, गिरोहों की रहनुमा, केन्द्र सरकार ने अध्यादेश लाकर सर्वोच्च न्यायालय को भी ताक पर रख दिया। कल आस्था और परम्परा के नाम पर नरबली, सतीप्रथा, शूद्र हत्या, बाल-विवाह जैसी चीजों को भी कानून के बन्धनों से मुक्त करके, बहाल कर दिया जाये तो कोई ताज्जुब की बात नहीं होगी।

पिछले दिनों हमारे दिमाग में तमिलनाडु की जो तस्वीर ठूँसी गयी है उसमें केवल फुफकारते साँड़ और उनके ईद-गिर्द जमा अहमक नौजवनों की भीड़ है। लेकिन जलीकट्टू की तस्वीर तमिलनाडु की आज की सच्चाई को नहीं दिखाती बल्कि असली तस्वीर को छिपाने के लिए हमारी आँखों पर पट्टी बाँध देती है। यह पट्टी खुद तमिलनाडु के उन थोड़े से नौजवानों की आँखों पर सबसे ज्यादा कसकर बाँधी गयी है, जो सूखे से तड़प रही अपनी जनता के हक में आवाज उठाने के बजाय जलीकट्टू के लिए हाय-तौबा मचा रहे हैं।

'ओछे' प्रचार माध्यमों ने तमिलनाडु की जिस तस्वीर पर साजिश के जरिये पर्दा डाला है, वह एक भयावह सूखे से तबाह प्रदेश की है। एस रंगनाथन की चश्मा चढ़ी आँखों में गहराई तक निराशा बैठी है। वह कावेरी डेल्टा किसान हितकारी संघ के प्रधान सचिव हैं। उन्होंने बताया कि '' मैने अपनी 65 साल की जिन्दगी में ऐसा सूखा नहीं देखा।'' इस बार मई से अगस्त के दक्षिण-पश्चिमी मानसून (कुरूवई) और अक्टूबर से दिसम्बर के उत्तरी-पूर्वी मानसून (साम्बा), दोनों ने एक साथ धोखा दिया। हालाँकि 2011 से कुरूवई की बरसात में लगातार गिरावट जारी थी। रही-सही कसर कावेरी जल विवाद ने पूरी कर दी। सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बावजूद, कांग्रेस शासित कर्नाटक ने तमिलनाडु के हिस्से का पानी नहीं छोड़ा। आदेश के अनुसार कर्नाटक को जून से मई तक एक साल में 192 टीएमसी फुट पानी तमिलनाडु के लिए छोड़ना था। लेकिन सुप्रीम कोर्ट के बार-बार कहने के बावजूद भी कर्नाटक की कांग्रेस सरकार ने केवल 66 टीएमसी फीट पानी ही छोड़ने की इजाजत दी।

दिसम्बर के महीने में तमिलनाडु की नहरों और नदियों में धूल उड़ रही है या फिर इतना ही पानी रह गया है कि पंछियों के भी गले तर न हो। यही हाल उन बाँधों और झीलों का है, जिनका तल कभी मौजूदा पीढ़ी ने नहीं देखा था। चेन्नई शहर को पानी सप्लाई करने वाले विभाग के अधिकारियों का कहना है कि ''हमारे पास जितना पानी बचा है उससे बामुश्किल चार हफ्तों तक ही शहर की प्यास बुझायी जा सकती है।''

सूखे का संकट तेजी से अकाल का रुप लेता जा रहा है। देश के सबसे ज्यादा बरसात वाले राज्यों में शुमार होने के बावजूद आज तमिलनाडु के गाँवों में टैंकरों से पीने का पानी पहुँचाने की नौबत आ गयी है। मुख्यमंत्री पन्नेरसेल्वम ने आंध्र प्रदेश से पानी की गुहार लगायी है क्योंकि उन्हें कर्नाटक से मदद की कोई उम्मीद नहीं है।

कावेरी डेल्टा के अंतिम छोर के तंजावुर, त्रिवरुर, नागिपट्टम जैसे धान का कटोरा कहे जाने वाले जिलों में धान की फसल के नाम पर केवल ठूँठ बचे हैं। किसानों ने अपने मवेशियों को यह सोचकर धान के खेतों में छुट्टा छोड़ दिया है कि कम से कम इनके पेट की तो आग बुझे। मक्का और ज्वार के खेतों का हाल यह है कि एक छोर पर माचिस की तीली लगाओ तो पलक झपकते ही आग दूसरे छोर पर निकल जाये।

लाल और काले चने के खेत सूखे

मैदान बन गये हैं। उनमें कौन सी फसल लगायी गयी थी, यह केवल बोने वाला किसान ही बता सकता है। सीजन के बावजूद कपास के खेतों में कहीं सफेदी दिखायी नहीं देती। बस जलावन बचा है। ऐसे में प्याज, टमाटर व दूसरी सब्जियाँ और अंगूर तथा दूसरे रसभरे फलों की खेती के हाल का हम सहज ही अन्दाजा लगा सकते हैं।

नागिपट्टम जिले के एक किसान ने 80,000 रुपये में पत्नी के जेवर बेचकर 1.2 हेक्टेअर (लगभग 15 बीघा) जमीन धान उगाने के लिए बटाई पर ली थी। कुरूवई का धान भी खराब मानसून के चलते खत्म हो गया था और अब साम्बा के धान की फसल में भी मानसून ने धोखा दे दिया। 14 दिसम्बर को वह दो बार खेत पर गया। दूसरी बार दोपहर के खाने के वक्त लौटा। पत्नी ने खाने के लिए पूछा तो बोला कि पान खाने का मन है, तुम दुकान से ला दो। पत्नी जब पान लेकर लौटी तो कमरे में रस्सी से उसकी झूलती लाश मिली। उसके परिवार की कैसे गुजर-बसर होगी, बटाई के बाकी रुपये कहाँ से आयेंगे, कौन जाने?

जनता के बीच की चर्चाओं पर भरोसा किया जाये तो नवम्बर के पहले सप्ताह से जनवरी के पहले सप्ताह तक के दो महीनों में 160 से ज्यादा किसानों की आत्महत्या या हार्ट फेल होने से मौत हो चुकी है। राज्य सरकार कह रही है कि ये दावे झूठे हैं और किसानों की मौत के मामले 17 से ज्यादा नहीं हैं। वह दावा कर रही है कि इसकी जाँच करायी जाएगी और अगर ये 17 मामले सही पाये गये तो इन्हें तीन लाख रुपये का मुआवजा दिया जाएगा।

जब कुरूवई और साम्बा मानसूनों ने धोखा दे दिया तो जान देकर भी जोत बचाने को अभिशप्त किसान कुआँ खोदकर पानी निकालने की जुगत में लग गये। हालाँकि ज्यादातर पुराने कुओं का पानी सूख गया था। फिर भी किसान बाजिद सूखी धरती में सूराख करने पर आमदा हो गये। साधन के नाम पर उनके पास केवल कुदालें, टोकरें, बल्लियाँ, कुछ सौ फुट टूटी-फूटी तार और डीजल इंजन से जुगाड़ करके बनायी गयी एक ऑटोमैटिक घिरनी है। मात्र इसी के दम पर वे अन्दर से पथरीली धरती में सौ-सौ फीट नीचे उतर रहे हैं।

पानी के लिए किसानों की तलब उन्हें दुस्साहस की सारी हदें लाँघने को मजबूर कर रही है। बात केवल टूटे-फूटे तारों के सहारे पथरीली धरती में उतरने की ही नहीं है। बल्कि इससे कहीं आगे बढ़कर वे खुद को और अपने पूरे परिवार को उम्र भर के लिए कर्ज के गड्ढे में धकेल चुके हैं। सभी जानते हैं कि नोटबन्दी के चलते पिछले तीन महीनों से जनता पाई-पाई के लिए तरस रही है। ज्यादातर किसनों को कर्ज देने वाले सहकारी बैंक और ग्रामीण बैंक केन्द्र सरकार के फैसले के चलते ठप्प पड़े हैं। किसानों के पास जो थोड़ी बहुत नकदी थी वह भी नवम्बर के दूसरे हफ्ते में ही बैकों में वापस जमा हो गयी थी। सूखे के चलते आये संकट से निपटने के लिए उन्हें नकदी की फौरी जरुरत थी। इस जरुरत के लिए किसानों ने या तो अपनी पत्नियों के जेवर औने-पौने दामों पर बेच दिये या फिर साहूकारों से बेहद ऊँची ब्याज दर पर कर्ज लिये। ज्यादातर ब्याज की दर 10 रुपये सैकड़ा माहवार या 120 रुपये सैकड़ा सालाना रही। खेती की तबाही के इस दौर में इतना भारी-भरकम ब्याज भरना किसानों के लिए सम्भव ही नहीं है। वे जीवन भर के लिए कर्ज की दलदल में धँस गये हैं और लाशों पर मँड़राते गिद्धों की तरह साहूकारों की मौज बन आयी है।

तंजावुर में एक नौजवान को जब खर्च चलाने लायक नौकरी नहीं मिली तो उसने खेती करनी शुरु की। ट्रैक्टर चलाने का लाइसेंस लिया और एक ट्रस्ट से 35 बीघा जमीन 25 साल के लिए बटाई पर लेकर उसमें धान की खेती शुरू की। जमीन की पेशगी और फसल बुआई पर ही उसके 3 लाख रुपये से ज्यादा खर्च हो गये। जब उसे अपनी फसल तबाह होती नजर आयी और यह साफ हो गया कि न तो आसमान में एक बूँद पानी है और न ही धरती पर, तो कुदरत और जवानी में ठन गयी। उसने साहूकार से 40 हजार रुपये ब्याज पर लेकर कुआँ खोदना शुरु किया। 65 फुट खुदाई के बाद भी पथरीली धरती से पानी की एक बूँद नहीं निकली। यह नोटबन्दी के ठीक बाद का समय था। कुदरत का कहर जारी था और धरती के मक्कार खुदाओं ने भी अपनी करनी में कोई कसर नहीं छोड़ी। फसल बर्बाद होने का मतलब था पूरे परिवार का सदा के लिए कर्जदार बना जाना। उसने दूसरा कुँआ खोदना शुरु कर दिया। 14 दिसम्बर को 80 फुट की गहराई तक पहुँच गया। वहाँ भी केवल सूखी मिट्टी और बजरी मिली। 25 साल की उम्र में उसने कीटनाशक पी कर आत्माहत्या कर ली।

आज उसके परिवार को साबित करना पड़ रहा है कि वह एक किसान था और उसने घरेलू झगड़े, प्रेम-प्रंसग या नपुंसकता के कारण प्राण नहीं त्यागे। शायद उन्हें यहाँ भी हारना पड़ेगा। क्योंकि सरकारी परिभाषा के अनुसार किसान वही है जिसके नाम पर काश्त की जमीन हो। बटाई पर जमीन लेकर खेती करने वाले किसान नहीं हैं। पिछले 2 महीनों में जिन 102 किसानों की मौत की खबरें आयी हैं वे सभी या तो सीमान्त किसान थे या बटाईदार।

देर आयद, दुरुस्त आयद पर पूरी तरह भरोसा करते हुए तीन जनवरी को मुख्यमंत्री ओ पन्नेरसेल्वम ने कहा कि राज्य में एक साल में औसतन 44 सेन्टीमीटर वर्षा होती थी, इस साल केवल 16.83 सेन्टीमीटर ही हुई। राज्य के 32 में से 21 जिलों में वर्षा में 60 फीसदी से ज्यादा की गिरावट आयी है। बाकी के 11 जिलों में भी 35 से 59 फीसदी तक की गिरावट है। हालाँकि किसी भी राज्य सरकार को वर्षा में 25 फीसदी से ज्यादा कमी आते ही सूखा

घोषित करने का अधिकार है, लेकिन तमिलनाडु सरकार की 'देर आयद' की वजह समझ से परे है।

अगले दिन 4 जनवरी को सरकार ने 'दुरुस्त आयद' के रूप में जनता के लिए जो राहत का पिटारा खोला उसमें लफ्फाजी के अलावा कुछ नहीं निकला। सरकार की पहली घोषणा है कि एक साल का भूमिकर माफ कर दिया जाएगा। यह काश्त की जमीन पर लगने वाला नाम-मात्र का कर है। इससे बटाईदार किसानों और छोटे किसानों को कोई लाभ नहीं होगा।

दूसरी घोषणा में सरकार ने कहा है कि किसानों के बैंक कर्जों को जमा करने की समय-सीमा बढ़ायी जाएगी (कर्जे माफ नहीं किये जायेंगे)। सभी जानते हैं कि खेती के कर्ज का काफी बड़ा हिस्सा सूदखोरों से लिया जाता है। इसके अलावा नाबार्ड की रिपोर्ट बताती है कि पिछले साल सरकारी बैंको ने किसानों को दिये जाने वाले नये कर्जों में 70 फीसदी की कटौती की है। पिछले साल किसानों को दिये जाने वाले कर्ज में 1,15,205 करोड़ रुपये की बढ़ोत्तरी हुई थी। पिछले कई सालों में लगभग इतनी ही बढ़ोत्तरी हो रही थी। लेकिन इस साल यह आँकड़ा केवल 31,896 करोड़ तक ही पहुँचा। पूँजीपतियों द्वारा बैंकों से लिया कर्ज मार कर बैठ जाने के चलते बैंकों के पास पूँजी की कमी थी। लिहाजा किसानों को दिये जाने वाले कर्जों में कटौती की गयी। साफ है कि देश के किसानों को अधिकांश कर्ज सूदखोरों से ही लेना पड़ा होगा। सरकार की इस राहत से भी किसानों को क्या मिलेगा?

गौरतलब है कि नोटबन्दी के एक सप्ताह बाद ही केन्द्र सरकार ने 63 पूँजीपतियों का 7 हजार करोड़ रुपये का बैंक कर्ज माफ करवाया था। इससे पहले भी सरकार पूँजीपतियों को लाखों करोड़ की राहत दे चुकी है। लेकिन इसी 'देशभक्त' केन्द्र सरकार ने सूखे से तबाह, आत्माहत्या को मजबूर किसानों को राहत के नाम पर फूटी कौड़ी भी नहीं दी। हाँ, नोटबन्दी करके, आड़े वक्त के लिए बचाकर रखी गयी, उनकी जमा पूँजी जरूर छीन ली। प्रधानमंत्री रोज चुनावी सभाएँ करते घूम रहे हैं लेकिन तमिलनाडु के किसानों का हाल जानने की उन्हें फुरसत नहीं है। इसके विपरीत जलीकट्टू के पक्ष में अध्यादेश लाकर, इस वाहियात मामले को हवा देकर कोशिश की जा रही है कि पीड़ित जनता एक होकर अपने हक में कोई आवाज भी न उठा सके।

तमिलनाडु सरकार ने राहत की चौथी घोषणा में वादा किया है कि जिन किसानों की 33 फीसदी से ज्यादा फसल खराब हो गयी है, उन्हें 5465 रुपये प्रति एकड़ (लगभग 1000 रुपये बीघा) की दर से मुआवजा दिया जाएगा। खेती से जुड़ा कोई भी आदमी बता देगा कि इतने पैसों में तो नयी फसल की बुवाई के लिए खेत भी तैयार नहीं होता। रही बात फसल बीमें की, तो अधिकांश किसानों का तो फसल बीमा है ही नहीं। जिनका है भी उनके लिए बीमा एजेन्ट फसल की जाँच करके कितना नुकसान मंजूर करेंगे, कितनी रकम पास करेंगे, उन्हें पैसा कब मिलेगा, कितना मिलेगा, इसका कोई ठौर नहीं। जब तक यह राहत की संजीवनी आयेगी तब तक पता नहीं कितने किसान खाक में मिल चुके होंगे, कितने उजड़ चुके होंगे और कितने सदा के लिए कर्ज के जाल में फँस चुके होंगे।

किसानों के अलावा देहात में आबादी का एक बड़ा हिस्सा ऐसा होता है, जो खेती तो नहीं करता लेकिन खेती पर ही निर्भर होता है-- जैसे मजदूर, पशुपालक, दुकानदार, कारीगर, नाई, मिस्त्री आदि। सूखे का इन पर भी किसानों जितना ही और कई मामलों में तो किसानों से भी ज्यादा बुरा असर हुआ है। पूरे तमिलनाडु से और खास तौर से कावेरी डेल्टा के जिलों से भारी संख्या में लोगों का पलायन केरल, कर्नाटक व आन्ध्र प्रदेश में हो रहा है। देहात की आबादी के इस काफी अहम हिस्से पर सूखे से टूटी मुसीबतों की दास्तान बेहद दर्दनाक है।

'चौपाया लोकतंत्र'' की सरकारों की उपेक्षा और मक्कारी तथा सूखे से टूटे मुसीबतों के पहाड़ के नीचे कराहती मेहनतकश जनता ही आज तमिलनाडु की असली तस्वीर है। यह असली तस्वीर लोगों की आँखों से ओझल रहे और मेहनतकश जनता एका करके अपने ऊपर पड़े पहाड़ को उठाकर न फेंक दे, इसीलिए जलीकट्टू जैसे नकली मुद्दों को उछाला जा रहा है। कमाल की बात तो यह है कि जलीकट्टू पर सुप्रीम कोर्ट के आदेश के खिलाफ अध्यादेश लाने की हद तक जाकर अपने आपको तमिलनाडु के नौजवानों की 'आस्था' का फिक्रमन्द वह सरकार दिखा रही है, जिसका तमिलनाडु की जनता पर मुसीबतें ढाने में सीधे तौर पर हाथ है। जो आस्था के लिए तो बड़ी चिन्तित दिखती है लेकिन मुसीबतों की मारी जनता की मदद के लिए उसके पास फूटी-कौड़ी नहीं है, बल्कि खाये-अघाये पूँजीपतियों पर दिल खोल कर दौलत लुटा रही है। स्पष्ट है कि खुद तमिलनाडु की सरकार का चरित्र भी केन्द्र की सरकार से जुदा नहीं है। सच तो यह है और मौजूदा पीढ़ी इसे अच्छी तरह देख चुकी है, कि सरकारें किसी भी पार्टी की हो हमेशा लोकतन्त्र का इस्तेमाल जनता को कुचलने के लिए करती हैं। लेकिन सवाल यह है कि जलीकट्टू के लिए हाय-तौबा मचा रहे तमिलनाडु के नौजवान क्या इतने अहमक हो गये हैं कि उन्हें यह सच्चाई दिखायी नहीं देती।

आज देश के नौजवानों से उम्मीद की जाती है कि वे जनता के दुश्मनों के हाथ का खिलौना न बनकर मुसीबत में फँसी अपनी जनता के साथ खड़े हो जायें। जनता के सामने उसे रौदनें वाले ''चौपाया'' लोकतन्त्र और इसके मालिकों का पर्दाफाश करेंगे। एक ऐसे सच्चे लोकतन्त्र को जमीन पर उतारने की तरकीब सोचेंगे, जिसमें एक आदमी दूसरे का मालिक न हो, दूसरे पर सवारी न गाँठे, जिसमें इंसान द्वारा गढ़ी गयी और कुदरती आपदाओं का सब मिलजुल कर सामना करें।

आर्थिक असमानता : अमीरों की सम्पत्ति में बेहिसाब वृद्धि

--ललित कुमार

ऑक्सफेम की रिपोर्ट के अनुसार केवल 62 लोगों के पास दुनिया की आधी आबादी के बराबर सम्पत्ति है। इनमें 53 पुरुष और 9 महिलायें शामिल हैं। दुनिया भर के नेताओं ने बढ़ती असमानता की समस्या को हल करने के बारे में बातें की, बड़े-बड़े सम्मलेन आयोजित किये और इसे हल करने की दिशा में कई योजनाएँ भी बनायीं। लेकिन 2010 से लगातार असमानता में बढ़ोत्तरी हो रही है। इसका पता इसी बात से चलता है कि 2010 में 388 लोगों की सम्पत्ति दुनिया की 350 करोड़ गरीब लोगों की सम्पत्ति से अधिक थी। 2015 तक आते-आते केवल 62 लोगों की सम्पत्ति दुनिया की आधी गरीब आबादी की सम्पत्ति से ज्यादा हो गयी। जाहिर है कि एक तरफ सम्पत्ति का केन्द्रीकरण मुट्ठी भर लोगों के हाथों में तेजी से बढ़ रहा है और दूसरी तरफ दुनिया की आधी गरीब जनता का कंगालीकरण भी उसी रफ्तार से बढ़ता जा रहा है। 2010 के बाद से दुनिया की आधी गरीब जनता यानी 350 करोड़ लोगों की सम्पत्ति में 38 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गयी। इसी समय दुनिया के 62 सबसे अमीर लोगों की सम्पत्ति में 3,000,000,000,000 रुपये की वृद्धि हुई। अब उनकी सम्पत्ति 10,000,000,000,000 रुपये यानी 10 लाख करोड़ रुपये हो गयी है।

लगभग सभी देशों की सरकारों ने इन मुट्ठी भर अति धनाढ्य लोगों को टैक्स में छूट देकर उन्हें अपनी सम्पत्ति बढ़ाने का मौका दिया है। टैक्स में छूट पाये इन अय्याशों ने अपने सारे सामाजिक कर्तव्यों को छोड़ दिया है। इनमें से अधिकांश धनपशु जवानी की उम्र से गुजर रहे हैं। ये कानून को ठोकर पर रखते हैं। इनकी संख्या इतनी कम है कि इन्हें एक बस में भरा जा सकता है या दो सैनिक बन्दूक की नोक पर जेल में ठूँस सकते हैं। लेकिन अपनी अथाह पूँजी के दम पर ये सरकारों को भी अपनी उँगलियों पर नचाते हैं।

पिछले साल जनवरी में स्विट्जरलैंड के पाँच सितारा होटल दावोस में भव्य पार्टी का आयोजन किया गया जिसमें दुनिया के सबसे महँगे पकवान परोसे गये। इस पार्टी में दुनिया भर के 2500 सबसे अमीर और शक्ति सम्पन्न लोग शामिल हुए। यहाँ उन्होंने विश्व आर्थिक फोरम की मीटिंग की। इस मीटिंग में इन अमीरों ने अपनी सम्पत्ति को बढ़ाने के लिए तरह-तरह के उपायों पर चर्चा की। इनके बीच ऑक्सफेम की कार्यकारी निदेशिका विन्नी ब्यानीयमा भी उपस्थित थीं। उन्होंने कहा कि अरे भाई आप लोगों की करतूतों के चलते असमानता बहुत बढ़ गयी है, दुनिया भर में 100 करोड़ लोग रोजाना 100 रुपये से कम पर गुजारा करते हैं। स्थिति बहुत विस्फोटक होती जा रही है। गरीबी दूर करने के लिए कुछ करो, नहीं तो खतरा सिर पर मँडरा रहा है। उन्होंने कहा कि 2009 में 1 प्रतिशत सबसे अमीर लोगों के पास दुनिया की सम्पत्ति का 44 प्रतिशत था, जो 2014 में बढ़कर 48 प्रतिशत हो गया। इतनी सम्पत्ति के बावजूद आप लोग और अधिक सम्पत्ति जुटाना चाहते हैं?

रिपोर्ट के अनुसार अफ्रीकी अर्थव्यवस्था का 30 फीसदी विदेशों में है। जिसका प्रत्येक वर्ष का टैक्स इतना है कि अफ्रीकी माँओं और उनके बच्चों के लिए स्वास्थ्य सेवा की गारन्टी हो सकती है और प्रत्येक अफ्रीकी बच्चे के पास पर्याप्त अध्यापकों की व्यवस्था की जा सकती है। ऐसे ही तमाम देशों की पूँजी विदेशों के स्विस बैंकों में जमा है। लेकिन उन्हें सार्वजनिक क्षेत्रों में इस्तेमाल नहीं किया जा रहा है।

हरुन ग्लोबल रिच लिस्ट के अनुसार, 2016 में दुनिया में 99 नये अरबपति जुड़े, जिसमें भारत के 27 अरबपति शामिल हैं। ज्यादातर अमीरों की तिजोरी भरने के स्रोत दवा, नशीले पदार्थ, तेल और गैस के कारोबार हैं। इन अमीरों का रुपया इन्फ्रास्ट्रक्चर, रियल स्टेट और सट्टा बाजारी में लगा हुआ है। इन मुट्ठी भर अमीरों को सरकार की तरफ से कर में छूट मिलती है। मुकेश अम्बानी भारत के सबसे धनी व्यक्ति हैं, जो रिलायंस इन्डस्ट्री के मालिक हैं जिसका मुख्य कारोबार तेल और गैस है। मई 2014 में इस कम्पनी पर ओएनजीसी (सरकारी कम्पनी) के कुँए से गैस चोरी करने का आरोप लगा था। इसने 30 हजार करोड़ रुपये की गैस चुरायी थी। अपनी विशाल पूँजी के दम पर मुकेश अम्बानी का सभी सरकारों पर भारी प्रभाव है। इन्हें सस्ती दर पर कर्ज और बेहद सस्ती दर पर जमीन मुहय्या कराना सरकारों का काम रहा है। आज सरकारें ऐसे चन्द अमीरों की गोद में बैठकर उनकी दौलत बढ़ा रही हैं। 2 जी स्पेक्ट्रम घोटाले में टाटा समूह का नाम भी सामने आया था, लेकिन उन पर कोई खास कार्रवाई नहीं की गयी। आज कानून व्यवस्था केवल गरीब जनता को डराने-धमकाने तक सीमित रह गयी है। जनता के लिए कानून व्यवस्था का चरित्र बेहद दमनकारी है। यह केवल मुट्ठी भर अमीर लोगों का हुक्म बजाती है।

धनी-गरीब के बीच की इस बढ़ती

खाई के साथ भारत में आम लोगों का जीवन स्तर नरक से भी बदतर होता जा रहा है। मानव सूचकांक में भारत का 133वाँ स्थान है। यहाँ तक की कम संसाधन वाला क्यूबा मानव सूचकांक में 67वाँ और श्रीलंका 73वाँ स्थान रखता है। भारत इस दौड़ में चीन से भी पीछे है। मानव सूचकांक किसी भी देश के नागरिकों के जीवन जीने के स्तर को प्रदर्शित करता है जिसमें भोजन में जरूरी पोषक तत्वों की मात्रा, शिक्षा का स्तर, रोजगार की स्थिति और सामाजिक जीवन आता है। भारत की अधिकांश जनता बेहद गरीबी और बदहाली में जिन्दगी गुजार रही है। इसके बावजूद भारत दुनिया भर में सातवाँ सबसे धनी देश है। इसकी कुल सम्पत्ति 364 लाख करोड़ है। अमरीका पहले पायदान पर है जिसकी कुल सम्पत्ति 3178 लाख करोड़ है। दूसरे और तीसरे पायदान पर चीन और जापान हैं जिनकी कुल सम्पत्ति क्रमशः 1133 लाख करोड़ और 981 लाख करोड़ है। चौथे, पाँचवे और छठे पायदान पर क्रमशः इंग्लैण्ड, जर्मनी और फ्रांस हैं।

अमीर-गरीब की खाई को चौड़ी करने में सरकार की सचेत भूमिका रही है। 2008 में दुनिया मन्दी के संकट से जूझ रही थी, भारत में भी 2011 में मन्दी ने दस्तक देना शुरू कर दिया। 2011 से 2014 के बीच 1 प्रतिशत अमीरों की सम्पत्ति में खास इजाफा नहीं हुआ। उन्होंने मनमोहन सिंह सरकार के ऊपर सुधारों के दूसरे चरण के लिए दबाव बनाया। लेकिन, जनता और ट्रेड यूनियनों के भारी दबाव के चलते कांग्रेस सुधारों के दूसरे चरण को शुरू न कर सकी। पूँजीपतियों का गुस्सा कांग्रेस पर फूट पड़ा। उन्होंने कांग्रेस का एक-एक करके साथ छोड़ दिया और भाजपा के खेमे में चले गये। तालिका से स्पष्ट है कि 2014 में मोदी सरकार के आने के बाद से ही 1 प्रतिशत अमीरों की सम्पत्ति 49 प्रतिशत से बढ़कर 2016 में 58.4 प्रतिशत हो गयी। यह स्पष्ट है कि देश की सम्पत्ति में अमीरों का हिस्सा लगातार बढ़ता जा रहा है और उसी अनुपात में गरीबों का हिस्सा घटता जा रहा है। 2016 में देश के सबसे धनी 10 प्रतिशत अमीरों का देश की कुल सम्पत्ति में हिस्सा 80.7 प्रतिशत था। यानी बाकि की 90 प्रतिशत आबादी केवल 19.3 प्रतिशत सम्पत्ति की मालिक है। सबसे चौंकाने वाली तस्वीर यह है कि भारत की आधी जनता केवल 2.1 प्रतिशत सम्पत्ति की मालिक है। यानी भारत की 65 करोड़ की आबादी की औसत सम्पत्ति मात्र 11,760 रुपये है। इतनी कम सम्पत्ति में खाने, पहनने और दवा आदि पर खर्च करने के बाद कोई व्यक्ति अपनी दिनचर्या कैसे चला सकता है?

तालिका : भारत में अमीरों की सम्पत्ति में सालाना इजाफा

सन्	1 प्रतिशत अमीरों की सम्पत्ति	10 प्रतिशत अमीरों की सम्पत्ति
2010	40.3	68.8
2011	46.8	72.6
2012	48.8	73.8
2013	48.7	73.8
2014	49.0	74.0
2015	53.0	76.3
2016	58.4	80.7

स्रोतः क्रेडिट सुईस ग्लोबल वेल्थ डेटाबेस

असमानता को गिनी गुणांक से भी मापा जाता है। 1990 में, भारत का "गिनी गुणांक" 45 था, जो कि 2013 में बढ़कर 51 हो गया। वहीं 1990 में पड़ोसी देश नेपाल का गिनी गुणांक 40 था, जो की 2013 में घट कर 33 हो गया। भारत ऐसे देश से भी पीछे है जिसके पास कम संसाधन हैं। किसी भी देश का "गिनी गुणांक" नागरिकों के बीच आर्थिक असमानता और असमान आय के अन्तर को प्रदर्शित करता है। गिनी गुणांक बढ़ने का मतलब आर्थिक असमानता का बढ़ना है।

1990 के दौर में निजीकरण, वैश्वीकरण और उदारीकरण जैसी नीतियाँ लागू की गयीं। सट्टेबाजी और शेयर मार्केट सामने आये, जिसमें कोई भौतिक उत्पादन नहीं होता है, लेकिन कुछ शेयर धारकों की पूँजी दिन-दूनी और रात चौगनी होने लगी। पूँजीपतियों के मुनाफे को बनाये रखने के लिए डब्लूटीओ, आईएमएफ, फिक्की, एसोचैम और विश्व बैंक आदि संस्थाओं ने खुलकर काम किया। बढ़ती आर्थिक असमानता ही सामाजिक असमानता को जन्म देती है, आर्थिक गैर-बराबरी बढ़ने के चलते सामाजिक असमानता में भी बेतहाशा बढ़ोत्तरी हुई है।

क्या आज दुनिया की वर्तमान सरकारों के पास ऐसी कोई वैश्विक नीति है, जो अमीरों और गरीबों के बीच बढ़ती खाई को खत्म कर सके? सरकारें जनता को दी जाने वाली सब्सिडी में कटौती करना बन्द न करें, बल्कि उन्हें बढ़ायें। महिला और पुरुष का समान वेतन सुनिश्चित करें। नौजवानों के लिए उनकी योग्यतानुसार रोजगार और न्यूनतम वेतन की व्यवस्था करें। सरकारें के पूँजीपतियों को टैक्स में छूट देना और उन्हें सस्ती दर पर कर्ज देना बन्द करें। सरकार की योजना के केन्द्र में शिक्षा और स्वास्थ्य हो। पूँजीपतियों से सख्ती के साथ टैक्स वसूला जाये। तब जाकर इस खाई को एक हद तक कम किया जा सकता है। हालाँकि मुनाफे की इस व्यवस्था के बने रहते ऐसा सम्भव नहीं है। क्या वर्तमान सरकारें असमानता को बढ़ावा देनेवाली इस व्यवस्था का खात्मा करेंगी? क्या वास्तव में ये गरीब जनता की सरकारें हैं?

क्यों हर बार ट्रेन पटरी से उतर जाती है?

--राजेश चौधरी

5 फरवरी 2016 को कन्याकुमारी बंगलुरू सिटी एक्सप्रेस की दुर्घटना, 1 मई 2016 को पुरानी दिल्ली-फैजाबाद एक्सप्रेस की दुर्घटना, 6 मई 2016 को चेन्नई-तिरुअनन्तपुरम सुपरफास्ट की दुर्घटना, 19 मई 2016 को कन्याकुमारी दिब्रूगढ़ विवेक एक्सप्रेस की दुर्घटना, 28 अगस्त 2016 को तिरुअनन्तपुरम-मंगलौर एक्सप्रेस की दुर्घटना, 20 नवम्बर 2016 को इंदौर-राजेन्द्रनगर एक्सप्रेस की दुर्घटना, 28 दिसम्बर 2016 को अजमेर सियालदाह एक्सप्रेस की दुर्घटना और 21 जनवरी 2017 को हीराखंड एक्सप्रेस की दुर्घटना।

इन दुर्घटनाओं को टाला जा सकता था। इनका होना अपरिहार्य नहीं था। इन दुर्घटनाओं में सैकड़ों लोग मारे गये और हजारों घायल हुए। हर घटना पर रेलवे के इतिहास में एक और काला पन्ना जुड़ जाता है। लोगों के मरने की खबर के साथ ही उनकी जिन्दगी की बोली लगाने वाले मुआवजे की घोषणा कर दी जाती है। साथ ही एक जाँच आयोग बैठता है जो कुछ महीने बाद अपनी रिपोर्ट सौंपकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेता है। तब तक जनता के दिमाग से यह घटना ओझल हो जाती है। फिर एक नयी दुर्घटना घटती है। फिर लोगों के मरने की खबर के साथ ही उनकी जिन्दगी की बोली लगाने वाले मुआवजे की घोषणा कर दी जाती है। फिर एक जाँच आयोग बैठाकर कुछ महीने बाद रिपोर्ट आ जाती है। यह चक्र चलता रहता है। दुर्घटना-मुआवजा-जाँच आयोग-दुर्घटना।

लेकिन जो परिवार अपनों को खोते हैं वे इन दुर्घटनाओं को उम्र भर याद रखते हैं। उनके लिए यह महज एक दुर्घटना नहीं है। जीती-जागती, हँसती-खेलती जिन्दगियों का सवाल है। कोई भी मुआवजा और जाँच रिपोर्ट उन्हें इस दुर्घटना से पहले जैसा एहसास नहीं करा सकती। सोचिए, एक माँ जिसने अपना बेटा खो दिया। एक मासूम जिसने अपना पिता खोया। एक बेसहारा औरत जिसने परिवार चलाने वाले पति को खो दिया। ऐसी ही सैकड़ों कहानियाँ इन दुर्घटनाओं के साथ जुड़ी हुई हैं।

अब सारी रेल दुर्घटनाओं के विश्लेषण से तथ्य निकलता है कि इन दुर्घटनाओं में ज्यादातर गरीब लोग ही मारे जाते हैं। ज्यादातर दुर्घटनाएँ गैर-वीआईपी गाड़ियों में ही होती हैं। राजधानी और शताब्दी में नहीं। क्या इसका मतलब है राजधानी और शताब्दी पूर्ण रूप से सुरक्षित हैं? जी नहीं। पर कुछ हद तक। क्योंकि रेल पटरी और सिगनल वीआईपी और गैर वीआईपी गाड़ियों के लिए एक जैसे ही होते हैं। तो अन्तर कहाँ है? अन्तर है चेतावनी बरतने का। वीआईपी गाड़ी से पहले रेल पटरी की देखभाल का। वीआईपी गाड़ियों के कोच की गुणवत्ता का।

जाँच आयोग जो रिपोर्ट बनाता है उसका उपयोग तभी है जब उससे निकले निष्कर्षों को लागू किया जाये। अन्यथा रेलवे के रजिस्टरों में धूल चाटने के लिए रिपोर्ट बनाना सरकारी खर्च बढ़ाना है। 2011 में 10 जुलाई को कानपुर के पास फतेहपुर में एक दुर्घटना हुई थी। इसमें भी लोगों के दुख-दर्द दिल को दहला देने वाले थे। उस समय रेल मंत्री दिनेश त्रिवेदी ने नारा दिया- "सुरक्षा, सुरक्षा और सुरक्षा"। वाकई इतनी उन्नत तकनीकी के दौर में रेलों का लगातार दुर्घटनाग्रस्त होना पूरी व्यवस्था पर सवाल खड़ा करता है। हाल की दुर्घटना पर मौजूदा रेल मंत्री कह रहे हैं कि "अपराधी के खिलाफ कठोर से कठोर कार्यवाही की जायेगी"। कौन है अपराधी? क्या हम अंग्रेजों पर इल्जाम लगा रहे हैं कि आपने इतनी खराब रेल बनायी कि आजादी के बाद 70 साल भी ठीक से नहीं चल सकी, नहीं। तो क्या वह गरीब, ठेके पर काम करने वाला गैंगमेन है अपराधी? जिसे यह भी नहीं पता कि पटरी में लगे लोहे की भार ढोने की क्षमता क्या है और उसे कब बदल देना चाहिए। तो फिर क्या भाजपा सरकार अपराधी है, नहीं। रेलवे का पतन रातों-रात नहीं हुआ है। इसके पतन में अब तक सत्ता में आने वाली सभी सरकारों ने बारी-बारी से भूमिका निभायी है। मौजूदा सरकार भी उसी की एक कड़ी है। राजनीतिक पार्टियों ने रेलवे को राजनीतिक साधन के तौर पर इस्तेमाल तो किया, लेकिन इसे सार्वजनिक सम्पत्ति और यातायात के सबसे अच्छे साधन के रूप में विकसित नहीं किया।

इतनी खस्ता हालत होने के बावजूद भारतीय रेल दुनिया भर के सक्षम लोगों का एक बेहतर संगठन है। लेकिन इसे लगातार खत्म किया जा रहा है। ऐसा क्यों हो रहा है? इसके पीछे की मंशा खुद प्रधानमंत्री बड़े जोर शोर और गर्व के साथ अपने भाषणों में कहते रहते हैं वह है रेलवे का निजीकरण, रेलवे में विदेशी निवेश। भारतीय रेल की मौजूदा समस्या है कि यह दिवालिया होने के कगार पर है। जल्दी ही भारतीय रेल को

तनख्वाहें देने के लिए उधार की जरूरत पड़ने वाली है। इस बार इसका कुल घाटा 25 हजार करोड़ रुपये का है। रेलवे के पास पुरानी पड़ गयी सम्पत्ति जिसमें -- रेल पटरी, सिगनल सिस्टम, पटरी जाँचने वाली छोटी गाडियों को बदलने के लिए पर्याप्त पूँजी नहीं है। साल-दर-साल पुरानी सम्पत्ति को बदलने के लिए 20 से 25 हजार करोड़ रुपये की जरूरत होती है। 2016 के बजट में रेलवे को मिला 3200 करोड़ रुपये। यह रकम बहुत कम है। ध्यान दीजिए इससे बड़ी रकम 9000 करोड़ रुपये विजय माल्या लेकर भाग गया था। इतनी कम पूँजी के चलते पुराने संसाधनों को बदलना स्थगित कर दिया गया। इस तरह सुरक्षा से समझौता कर लिया गया। ऊपर से आजकल सुरक्षा के बजाय रेल के अन्दर मध्यम वर्ग को खुश करने के लिए खान-पान की विविधता, जैसे पनीर, चिकन और पिज्जा तक को मेनू में रखा गया है। वाई-फाई पर पूरा जोर है। बुलेट ट्रेन के लिए तो जापान और चीन के सामने नाक रगड़ने तक को तैयार हैं। माल भाड़े को पिछले साल के मुकाबले 15 फीसदी कम कर दिया गया है। नये एलएचबी कोच को बदलने कि प्रक्रिया कछुए से भी सुस्त चल रही है। पटरी की दरारों को जाँचने की तकनीकी है लेकिन पूँजी के अभाव में लागू नहीं हो सकी है।

दूसरी बात, आये दिन रेलगाड़ियों में लोग अपनी जान से हाथ धो रहे हैं। लोग रेल के सफर में असुरक्षित हैं। एक आधुनिक सुरक्षित एलएचबी कोच की लागत लगभग 3 करोड़ रुपया या 4.4 लाख डॉलर है। 50.7 अरब डॉलर में 11 लाख 49 हजार एलएचबी कोच खरीदे जा सकते थे। एक रेलगाड़ी में 25 कोच भी माने तो लगभग 46,000 रेलगाड़ियों को सुरक्षित कोच उपलब्ध कराये जा सकते थे। देश में कुल यात्री रेलगाड़ी हैं 12,617 और मालगाड़ी हैं 7,421। यानी सभी रेलगाड़ियों में सुरक्षित कोच उपलब्ध कराने के बाद भी काफी धन बच जायेगा।

रेलवे की बुनियादी समस्याओं के बारे में सोचने के बजाय हमारे देश के नेता और प्रशासनिक अधिकारी बुलेट ट्रेन के बारे में ही सोचते हैं। सरकार निजी कम्पनियों के साथ मिलकर अत्याधुनिक सुविधाएँ जैसे वाईफाई और अच्छी रसोई देने की बात कर रही है। रेलगाड़ियों की स्पीड बढ़ाने की लम्बी-चौड़ी योजनाएँ बन रही हैं। बुलेट ट्रेन के लिए चीन और जापान से सम्पर्क साधे जा रहे हैं। सोचने की बात यह है कि बुलेट ट्रेन न चले, वाईफाई न चले, ट्रेन में पिज्जा न मिले तो समाज के किस वर्ग को समस्या होगी?

गौर करने की पहली बात है कि यदि दुर्घटनाग्रस्त रेलगाड़ियों में साधारण के बजाय एलएचबी कोच होते तो इतनी जानें नहीं जातीं। दूसरी बात, यदि पटरी की दरारों को जाँचने की तकनीक का उपयोग होता तो एक भी जान नहीं जाती। जापान घूमना एक बात है, वहाँ से ठीक चीज सीख लेना दूसरी बात। भारत की तरह जापान में भी लाखों लोग रेल में यात्रा करते हैं। वे कैसे 1964 से बिना एक भी दुर्घटना के रेल चला रहे हैं? तकनीक, संसाधन और अपने नौजवानों के दम पर। हमारे तथाकथित नेता हैं कि इतने नौजवान, तकनीशियन और संसाधन होने के बावजूद रेलवे को उजाड़कर देशी-विदेशी पूँजीपतियों के बीच इसकी बन्दर बाँट की योजना बना रहे हैं। नौजवानों की नयी भर्ती करके, नयी रेल बिछाकर, नये एलएचबी कोच लगाकर रेलवे को ज्यादा जवाबदेह बनाने के बजाय इसकी अकूत सम्पत्ति को मुनाफे के भूखे भेड़ियों को चारे के रूप में देने की योजना बनायी जा रही है।

--पेज 42 का शेष

गया। पूरे मामले में रूस की दखलंदाजी जरूरी हो गयी।

बड़ी-बड़ी ताकतों के हल्ले-हंगामे में आईएसआईएस पर असली चोट करने वाले कुर्द-मजदूर लड़के और लड़कियों की कुर्बानियों पर पर्दा डाल दिया गया।

पूरे घटनाक्रम में और भी कई महत्त्वपूर्ण चीजें रही हैं जिन पर विचार किया जा सकता है, लेकिन यह हमारे लिए यहाँ सम्भव नहीं है। खैर रूस की मदद से आज सीरिया में शान्ति बहाल हो रही है, अलिप्पो को आईएसआईएस से लगभग मुक्त कराया जा चुका है और आईएसआईएस अपने अन्त के करीब है। लेकिन क्या यह सीरियाई जनता और अलिप्पो की सच्ची मुक्ति है? अपने ही देश में मेहनतकशों के राज को कुचलने वाले रूस के शासक क्या सीरियाई जनता को सच्ची मुक्ति दे सकते हैं? यह सच है कि सीरियाई राष्ट्रपति असद साम्राज्यवादियों की साजिशों का शिकार हुए हैं। उनके राष्ट्र की सम्प्रभुता को पैरों तले कुचला गया है। वे 'पीड़ित' हैं। लेकिन क्या सीरिया की तबाही के मामले में उनकी कमजोरी को नजरंदाज किया जा सकता है?

सीरिया के लाखों लोगों की मौत और पलायन के लिए आईएसआईएस की धर्मान्ध ताकतों को आसानी से जिम्मेदार ठहराया जा सकता है लेकिन क्या इस तबाही की असली जिम्मेदार वे साम्राज्यवादी ताकतें नहीं हैं जो ऐसे दैत्यों को पैदा करती हैं, इन्ही ताकतों ने दो-दो विश्व युद्ध करके दुनिया को खून में डुबोया था। दूसरे विश्व युद्ध के बाद से एक भी दिन ऐसा नहीं गुजरा जब इन साम्राज्यवादियों की फौजों ने दुनिया के किसी हिस्से में कत्लोगारत या कब्जा न किया हो। सत्ता और मुनाफे की लूट में अन्धी ये ताकतें किसी को क्या मुक्ति देंगी। अलिप्पो और सीरिया को सच्ची मुक्ति केवल वे ताकतें दिला सकती हैं जो दुनिया को साम्राज्यवादी ताकतों से मुक्ति दिलाने के लिए काम करती हों।

सीरिया में तबाही और अलिप्पो की मुक्ति

--अनुराग कुमार

अलिप्पो मुक्त हो चुका है! धर्मान्ध आईएसआईएस खात्मे के करीब है!

इस शहर में पहले आईएसआईएस के धर्मान्ध कायर लड़ाकों ने बेइन्तहाँ तबाही मचायी। उन्होंने पूरे शहर को जी भर के लूटा, शहर के बाशिन्दों पर वहशियाना जुल्म ढाये, जघन्य हत्याएँ व बलात्कार किये। बाद में इन दरिन्दों के खात्मे के नाम पर रूसी और तुर्की जहाजों ने आसमान से बम बरसाये। क्या यह वही अलिप्पो है जिसे ''पूरब का वेनिस'' कहा जाता था जिस शहर की पुरानी विरासत और कुदरती खूबसूरती को देखने दुनिया भर से लाखों सैलानी आते थे। नहीं, यह अलिप्पो नहीं है, यह तो मलबे का ढेर है।

यह सच है कि आईएसआईएस अब अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है। लेकिन, सब तबाहियों से अलग, इसने जिस तरह से अपने हिमायतियों और विरोधियों के दिमागों को जहरीला बनाया है, क्या वह असर आसानी से खत्म हो पायेगा। इसने 'इस्लाम' पर जो बदनुमा दाग लगाया है और उसके खिलाफ पूरी दुनिया में नफरत बढ़ायी है, क्या वह आसानी से खत्म हो पायेगी?

पाँच साल पहले तक जो सीरिया एक खुदमुख्तार और खुशहाल मुल्क माना जाता था, 'प्रति व्यक्ति आय' के मामले में एशिया के अगुआ देशों में था, आज बेवाओं और अनाथ बच्चों वाले बर्बाद मुल्क में तब्दील हो चुका है। इस दरम्यान चली जंग में तकरीबन 350,000 लोग मारे गये हैं और 400,000 से ज्यादा अपने मुल्क को छोड़ने पर मजबूर हुए हैं। अलिप्पो समेत सीरिया के 5 बड़े शहर तबाह हो चुके हैं।

सीरिया की तबाही का सबसे बड़ा जिम्मेदार, तेल और दुनिया पर कब्जे की हवस में अन्धा, दुनिया का अलम्बरदार, अमरीका है। आज यह जगजाहिर है कि आईएसआईएस को तबाह करने के लिए सबसे ज्यादा चीखने वाले-- अमरीका, ब्रिटेन, इजरायल, अरब और तुर्की ही इसके जन्मदाता और पालनहार थे। अमरीका की अगुआई वाला यह गिरोह मीडिया में तो आईएसआईएस को नेस्तनाबूद करने के फलसफे सुनाता था, लेकिन उसी से, तुर्की के रास्ते, औने-पौने दाम पर तेल खरीदता था। बदले में हर तरह की मदद के साथ-साथ उसे हथियार और वाहन बेचता था। टयोटा कम्पनी बता चुकी है कि उसने ब्रिटेन के जरिये आईएसआईएस को गाड़ियाँ बेची थीं।

सीरिया की तबाही की शुरुआत, आज 'अरब की हाड़ कम्पाती सर्दी' में तब्दील हो चुके 'अरब के बसन्त' से हुई थी। अपने मक्कार शासकों से मुक्ति की चाह में उठे अधकचरे जन-आन्दोलनों से उपजी बसन्त की बयारें बहुत ही जल्दी, शासकों से भी ज्यादा मक्कार उनके विरोधियों की रहनुमाई में चली गयी। ये विरोधी अपना ईमान पहले ही वॉशिंगटन में गिरवी रख चुके थे। जनता अनजान थी और बुरी तरह ठगी गयी।

तहरीर चौक के जनज्वार को अलसीसी की तानाशाही पर पहुँचा दिया गया। कभी यूरोप के देशों को कर्ज बाँटने वाले और 'एक अफ्रीका' का नारा लगाने वाले गद्दाफी के लीबिया को बर्बादी की मिसाल बना दिया गया। बाकि के जनउभारों का भी कमोबेश यही हाल हुआ। मुक्ति की उम्मीद से शुरू हुआ अरब का बसन्त, पूरे क्षेत्र को अमरीका और उसके गुर्गों की गिरफ्त में और ज्यादा मजबूती से फँसा गया।

सीरिया में अमरीका ने पहले तो असद के विरोधियों को हथियार मुहय्या कराये, इराकी अलकायदा से उनकी साँठ-गाँठ करायी और जब इससे भी काम नहीं चला तो इराक में पैदा हुए आईएसआईएस को अरब, इजरायल, तुर्की की मदद से एक खूँखार धर्मान्ध दैत्य बना कर उसका मुँह सीरिया की ओर कर दिया। जब यह भष्मासुर खुद अमरीका और पश्चिमी देशों पर तबाही बरसाने लगा तो अमरीका की मजबूरी बन गयी कि वह उसके खिलाफ युद्ध लड़े या लड़ने का कम से कम ढोंग तो करे। इसीलिए इस दैत्य को खत्म करने का ठेका अपने ही नाम करके अमरीका और उसका गिरोह विरोधियों से लड़ रही सरकार के खिलाफ मैदान में उतर गया। कमाल तो यह है कि अमरीका ने, अपने विरोधियों और आईएसआईएस से निपट रही सीरिया सरकार पर तरह-तरह की फौजी बन्दिशें थोप दी। उसने आईएसआईएस को नुकसान पहुँचाने के नाम पर कुर्द लड़ाकों और सीरियाई सेना को नुकसान पहुँचाया।

लेकिन सीरिया की तबाही में रूस के हित आड़े आ गये। सीरिया के टूटने का मतलब था, वहाँ मौजूद रूसी फौजी अड्डे का खात्मा और भूमध्यसागर में रूस की नाकेबन्दी। इसी के साथ-साथ इस क्षेत्र में रूस के सबसे भरोसेमन्द सहयोगी ईरान के अमरीकी प्रभुत्व में जाने का खतरा पैदा हो

--शेष पेज 41 पर

अभिलिखित इतिहास की विद्रूपता

--मुकेश आनन्द

"डॉ बी आर अंबेडकर की हत्या महाराज भरतपुर साहब ने गोली मारकर की थी। हुआ यह था कि महाराज साहब के बड़े भाई साहब लन्दन से पढ़कर वापस भारत आये और संसद में गये। उनके सम्मान में सारे सांसद खड़े हुए, एक बाबा साहब को छोड़कर। यही बात महाराज साहब को बर्दाश्त नहीं हुई और उन्होंने गोली चला दी।" यह कहानी हमें उस युवक ने सुनायी जिसे हमारे एक साथी ने हम लोगों की मदद के लिए बुलाया था। कहानी जो हम बता रहे हैं, उसके लिए यह इतिहास था। पहली जनवरी को हम तीन मित्रों का परिवार भरतपुर केवला देव पक्षी विहार गया था। हमारे चारों रिक्शा चालक स्थानीय ही थे, यह बात उन्हें पहले से ही पता थी। वे सब इस घटना से जुड़ी उन बातों को बताने लगे जो युवक से छूट गयी थी। आप जरा सा गौर करेंगे तो पायेंगे कि इस कथा के सामाजिक निहितार्थ कितने गहरे हैं। किन मजबूरियों में इसे जनता के बीच फैलाया गया होगा और बाबा साहब के प्रति कथा प्रचारकों में कितनी वितृष्णा रही होगी। इस बात के अलावा जो दूसरी 'महत्त्वपूर्ण' जानकारी इन साथियों ने हमें दी वह थी-- भरतपुर राज्य का कभी भी अंग्रेजों का गुलाम न होना तथा एक भयानक युद्ध में इस राज्य द्वारा अंग्रेजों को परास्त करना। साफ देखा जा सकता है कि शासित जनता पर प्रभुत्त्व को कायम रखने के लिए शासक वर्ग द्वारा अवाम को यह समझाना किस कदर जरूरी था कि उसने अंग्रेजों की तरफ से आने वाली राजनीतिक चुनौती तथा अम्बेडकर की ओर से आने वाली सामाजिक-सांस्कृतिक चुनौती का बहादुरी और सफलता के साथ मुकाबला किया है।

मुद्दा यह है कि देश में ऐसे अनगिनत 'इतिहास' फैले हैं और जनता उन पर भरोसा करती है। ये लिखित भी मिलेंगे और अलिखित भी। चारण कवियों द्वारा अपने आश्रयदाता राजाओं और उनकी वंश-परम्परा के गौरव गान का उद्देश्य इतिहास में शासकों की कीर्ति को अमर करना था, पर यह गौरव गान अपने आप में इतिहास नहीं है। आज के समय की एक समस्या यह बन गयी है कि बहुत से समूह ऐसी बातों को ही वस्तुनिष्ठ सच्चाई मान कर व्यवहार कर रहे हैं। यही स्थिति उन गाथाओं की है जिनको सूफी कवियों ने लोक-रुचि के आधार पर रचा, जिनका उद्देश्य 'प्रेम' तत्त्व का प्रसार था। जायसी की पद्मावत ऐसी ही रचना है। प्रसिद्ध फिल्मकार संजय लीला भंसाली के साथ जयपुर में करणी राजपूत सेना द्वारा किया गया अभद्र व्यवहार इसी पद्मावत महाकाव्य की नायिका से जुड़ा है। भंसाली पद्मावती के चरित्र को आधार बना कर अपनी फिल्म बना रहे हैं। करणी सेना का मत है कि भंसाली रानी पद्मावती को मुसलमान सुल्तान अलाउद्दीन से आकर्षित होते दिखाना चाह रहे हैं, जिससे उनके गौरव को ठेस पहुँच रही है। यहाँ यह उल्लेख रोचक होगा कि मशहूर आलोचक रामचन्द्र शुक्ल ने 'पद्मावत' की रानी पद्मावती के बारे में टिप्पणी की थी कि 'रानीपन समाप्त हो गया और नारीपन हावी हो गया।' साफ है कि जायसी ने सामन्ती समाज की मार झेल रही आम नारी के दर्द को बयान किया है। आज की स्थिति यह बन रही है कि पद्मावती के रानीपन को समाप्त कर उनको पुनः रानी बना दिया जाए। चूँकि वह राजपूत रानी है, स्त्री है तो एक जाति की अस्मिता और गौरव की वाहक है इसीलिए उनसे जुड़ी समस्त लोककथाएँ और साहित्य उस जाति विशेष की विरासत है, जिसकी रक्षा के लिए वह कुछ भी कर गुजरने को आमादा है। उपद्रवियों की भंसाली के साथ की गयी अभद्रता तब हास्यास्पद प्रतीत होने लगती है जब हम देखते हैं कि इरफान हबीब जैसे इतिहासकार और विजयदेव नारायण साही जैसे साहित्यकार पद्मावती को कवि की कल्पना मानते हैं।

दरअसल इतिहास से जुड़े विवाद हमारे राष्ट्रीय जीवन में आये दिन उठते रहते हैं और हमारी मेलजोल की संस्कृति को लहूलुहान करते रहते हैं। चुनावी राजनीति में बढ़ रहा जातिवादी रुझान इसको खाद पानी देता है। दिक्कत यह है कि आजादी के बाद से अबतक हम अपने नागरिकों को सार्थक वैज्ञानिक शिक्षा पद्धति नहीं उपलब्ध करा पाये। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना मूल कर्तव्यों में दर्ज हो संविधान की शोभा बढ़ा रहा है। जबकि व्यवहार में हम इतिहास का ज्ञान पा रहे हैं, टीवी पर आ रहे धारावाहिकों से, फिल्मों से, आजकल सर्वाधिक प्रचुर मात्रा में व्हाट्सऐप से और नेताओं के भाषणों से। चिंताजनक यह है कि एक तथाकथित सांस्कृतिक संगठन दशकों से गाँव और कस्बों में छोटी-छोटी कार्यशालाओं के जरिये अपने विशिष्ट ब्रांड का इतिहास पढ़ा, फैला रहा है। अब संचार क्रांति के व्यापक फैलाव ने इन प्रतिक्रियावादी संगठनों

की राह को आसान और पहुँच को व्यापक बना दिया है। सीधे आमने-सामने जनता को यह बताते इनको संकोच होता कि सुप्रसिद्ध वियतनामी क्रांतिकारी हो-चि-मिन्ह ने गुरिल्ला युद्ध की प्रेरणा और पद्धति महाराणा प्रताप से पायी थी, किन्तु व्हाट्स ऐप के जरिये इस झूठ को फैलाने में कोई समस्या नहीं। कितना भी हो, आँख में आँख डालकर झूठ बोलने में हर किसी को दिक्कत होती है। फिर सवाल उठने का भी तो खतरा रहता है। याद रहे! सवाल, हर नफरत फैलाने वाले व्यक्ति और संगठन का दुश्मन नम्बर वन होता है।

इन सारे आयामों के साथ एक महत्त्वपूर्ण आयाम बाजार भी है जो केवल और केवल हानि-लाभ के हृदयहीन तत्त्व से चालित होता है। रोमांस, उत्तेजना, हिंसा और विवाद भी खूब बिकता है। ऐतिहासिक चरित्रों के माध्यम से उसे आसानी से पैदा कर बेचा जा सकता है। फिल्मों और धारावाहिकों के जरिए ज्यादातर लाभ को ही साधने का उपक्रम किया जाता है। घात लगाये बैठी विभाजनकारी शक्तियाँ तत्काल उन्हें मुद्दा बना देती हैं और अपने हित साधन में जुट जाती हैं। इसके लिए उन्हें अधिक श्रम नहीं करना पड़ता है। एक कायदे की शुरुआत कर दीजिए, बाकी काम तो स्वतः स्फूर्त तरीके से स्वयं होता जाता है। उदाहरण के तौर पर हम भंसाली प्रकरण को ही लें। करणी सेना के कृत्य को समूचे राजपूतों का कृत्य मान एक दूसरा समूह बहस में उतरा और यह तर्क पेश किया कि अपने राज्यों को बचाने के लिए राजपूतों ने अपनी बेटियाँ मुगलों को सौंप दी थी। ऐसी क्रिया-प्रतिक्रया से लोगों के दिलों में बनने वाले जख्म लम्बे समय तक कायम रहते हैं। अजब यह है कि तर्क की जगह उत्तेजना घेरती जा रही है। इस कारण गाली-गलौज, हिंसा स्थापित होती जाती है। फलस्वरूप विभाजन की खाई और चौड़ी होती जाती है। इतिहास का कोई भी विद्यार्थी इस बात को भली-भांति जानता है कि राजपूत तथा मुगलों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध दोनों पक्षों की सुचिंतित राजनीतिक दूरदर्शिता के परिणाम थे। क्या यह बात मानने योग्य है कि मुगल राजनीतिक प्रशासनिक दृष्टि से इतने पिछड़े रहे होंगे कि अपनी विदेश नीति को स्त्री-लोलुपता की भेंट चढ़ा देंगे। उस सामन्ती समाज में राजाओं, बादशाहों को स्त्रियों की कमी थी क्या? मुगल हरम में फारस, तुर्की, आर्मेनिया तथा यूरोप तक की महिलाएँ थीं। दरअसल गंगा दोआब पर शांतिपूर्वक स्थायी नियंत्रण तथा गुजरात के बंदरगाहों तक निष्कंटक पहुँच के लिए उन्हें राजपूतों से मित्रता करनी ही थी। राजपूतों को अपने स्वराज पर अपने हिसाब से राज करने के लिए आगरा-दिल्ली के शक्तिशाली बादशाह से समझौता करना ही था। इन पारस्परिक जरूरतों ने राजनीतिक सम्बन्ध बनाये जिसे मजबूत करने के लिए वैवाहिक सम्बन्ध बनाये गए। एक प्रश्न जो अक्सर उठता है वह यह कि बेटियाँ राजपूतों ने ही क्यों दी, मुगलों ने क्यों नहीं। पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में ऐसे प्रश्न बहुत स्वाभाविक हैं। पर समझना चाहिए कि मुगल भी इस पितृसत्तावाद और जातीय श्रेष्ठता के अहं से अछूते नहीं थे। तैमूरी परम्परा के मुगल अतिशय श्रेष्ठता बोध से ग्रस्त थे। विदेशी यात्री बताते हैं कि मुगल शहजादियाँ कुंवारी रह जाती थीं क्योंकि उनके योग्य वर नहीं थे। ज्यादातर मुगल शहजादियों के विवाह शाही परिवार के भीतर होते थे। ऐसे में यह बात समझ में आती है कि क्यों मुगलों की बेटियाँ राजपूतों में नहीं ब्याही गयीं।

यह तय है कि इतिहास का वस्तुपरक ढंग से वैज्ञानिक अध्ययन एवं जन-जन तक इसकी पहुँच को सुनिश्चित करने का प्रयास नहीं किया गया तथा इसका दुरूपयोग करने वाले निहित स्वार्थी तत्वों पर लगाम नहीं लगाई गयी तो हम अपने सामाजिक ताने-बाने को नहीं बचा पायेंगे। विविधता से भरे हमारे समाज के लिए हमारा इतिहास बहुत महत्त्वपूर्ण और नाजुक विषय है। इसे ही लक्ष्य करके महात्मा गांधी ने कहा था कि हम स्वराज की दिशा में तब तक आगे नहीं बढ़ पायेंगे जब तक हमारे स्कूलों-कालेजों में पढ़ाया जा रहा गलत इतिहास बंद नहीं किया जाता। इतिहास विषय की यह संवेदनशीलता आज भी कायम है। समाज में वैज्ञानिक ढंग से लिखे इतिहास की पहुँच व्यापक करनी होगी और इतिहास में तथा इतिहास के नाम पर तमाम माध्यमों में की जा रही लफ्फाजियों में फर्क करना होगा। कला माध्यमों में कल्पना के प्रयोग के बरक्श भाषणों में उन्माद का तत्त्व बढ़ा है। हमें यह समझना और समझाना होगा कि इतिहास भविष्य के लिए राह तलाशने का जरिया है, उससे भावना के स्तर पर ग्रस्त होना ठीक नहीं। जो प्रतिक्रियावादी हैं, जिनका आदर्श वह अतीत है जिसमें वे सुविधा के साथ विशाल जनता के परिश्रम का उपभोग कर पा रहे थे, वे उस 'आदर्श' को पुनः प्राप्त करने के लिए कमर कस चुके हैं। लेकिन जिनका लक्ष्य मानव मुक्ति का प्रयत्न और हित साधन है, उन्हें दुगने बल के साथ सक्रिय होने का समय आ गया है।

○

नौजवानों को चाहिए कि भारतीय स्वतंत्रता के आदर्श को अपने जीवन के एकमात्र लक्ष्य के रूप में अपनाये। उन्हें चाहिए कि मक्कार तथा बेईमान लोगों के हाथों में न खेलें जिनके साथ उनकी कोई समानता नहीं है, जो हर नाजुक मौके पर आदर्श का त्याग कर देते हैं। उन्हें चाहिए कि ईमानदारी और संजीदगी के साथ 'सेवा, त्याग, बलिदान' को अनुकरणीय वाक्य के रूप मे अपना मार्गदर्शक बनायें। याद रखिये कि राष्ट्रनिर्माण के लिए हजारों अज्ञात स्त्री-पुरूष के बलिदान की आवश्यकता होती है, जो अपने आराम और हितों के मुकाबले तथा अपने एवं अपने प्रियजनों के प्राणों के मुकाबले देश की अधिक चिन्ता करते हैं।

--शहीद भगतसिंह

ललमटिया खदान हादसा : प्राकृतिक संसाधनों की लूट की हवस ने ली दर्जनों मजदूरों की जान

-रूपेश कुमार सिंह

झारखंड के गोड्डा जिला में कोल इंडिया की सहायक कम्पनी ईसीएल की राजमहल परियोजना के ललमटिया में भोड़ाय कोल माइंस साइट में 29 दिसम्बर की रात में खदान धँसने से हाहाकार मच गया था। खदान धँसने की खबर जंगल में आग की तरह चारों तरफ फैल गयी। अगल-बगल के गाँवों के हजारों लोग घटनास्थल पर पहुँचे, लेकिन घटना की भयावहता ने सबको हिलाकर रख दिया।

घटनास्थल के आसपास खदान में दबे मजदूरों को निकालने की कोई भी सुविधा न होने के कारण लोग उद्वेलित भी हुए, लेकिन उनके पास आक्रोश के अलावा और कुछ भी नहीं था, जिससे वे खदान में दबे मजदूरों को बाहर निकाल सकते थे।

गौरतलबब है कि ईसीएल राजमहल परियोजना की ललमटिया के भोड़ाय साइट में पिछले 10 सालों से खुदाई का काम चल रहा था, इसलिए इसे डीप माइनिंग के नाम से भी जाना जाता था। खदान में पहले ही काफी खनन कार्य हो चुका था। चारों ओर से खदान खंडहर हो गया था, इसमें और अधिक खनन साफ तौर पर मौत को दावत थी। फिर भी आश्चर्यजनक यह है कि 27 दिसम्बर को इसीएल के सीएमडी आर आर मिश्रा राजमहल परियोजना का निरीक्षण करने आये थे। उन्होंने भोड़ाय साइट का भी निरीक्षण किया। निरीक्षण के बाद भोड़ाय साइट को बन्द करने के बजाय यहाँ से और अधिक खनन का निर्देश दिया व साथ ही साथ भोड़ाय गाँव को हटाने का भी निर्देश दे दिया। इन घटनाक्रमों से स्पष्ट हो जाता है कि ईसीएल प्रबंधन की ज्यादा से ज्यादा खनन की हवस ने ही इस भयानक हादसे को निमंत्रण दिया है।

सुपरवाइजरों, ड्राइवरों व मजदूरों की माने तो वहाँ छोटी सी जगह में फँसे कोयले को निकालने के लिए 29 दिसम्बर को शाम 4 बजे ब्लास्ट किया गया। उस वक्त नीचे 80 मशीन व पे लोडर कार्यरत थे। उन लोगों को ब्लास्टिंग के बाद स्लाइडिंग का आभास हुआ, फलस्वरूप कई कर्मी जबरन वहाँ से मशीन लेकर भाग गये। एक रोचक बात यह भी है, अगर वहाँ काम कर रहे कर्मियों की मानें तो तीन दिन पहले खदान के निचले हिस्से में दरार आ जाने के कारण काम बन्द कर दिया गया था।

29 दिसम्बर यानी हादसे के दिन ईसीएल के प्रबंधक प्रमोद कुमार कम्पनी के कैंप में आये और वहाँ काम करने की अनुमति दी, साथ ही साथ उन्होंने कर्मचारियों को धमकी दी कि काम नहीं करने पर पदमुक्त कर दिया जायेगा। मजबूरन काम शुरु करना ही पड़ा। जो लोग भाग गये, वे तो बच गये लेकिन जो रोजी-रोटी के वास्ते काम पर ही डटे रहे, वे मलबे में तब्दील हो गए। वहाँ काम कर रहे कम्पनी के लोगों के अनुसार घटना के वक्त करीब 41 लोग अन्दर काम कर रहे थे और साथ में 35 हाइवा, 4 पे लोडर व 1 डोजर भी काम कर रहा था। सब के सब खदान धंसने से 300 फीट गहरी खाई में समा गये।

नये साल की खुशियां मनाने के बदले 41 परिवार मातम में डूब गए। खद्दरधारी नेताओं के घड़ियाली आँसू बहने शुरु हो गये और झूठी सांत्वना का दौर भी। आरोप-प्रत्यारोप का खेल भी जारी हो गया। फटाफट कोल इंडिया ने भी हाई पावर कमेटी का गठन कर दिया और इसका जिम्मा दिया गया सीएमपीडीआइ के सीएमडी शेखर शरण के नेतृत्व में गठित टीम को। कमेटी एक माह में अपनी रिपोर्ट सौंपेगी। कमेटी दुर्घटना के कारण, लोगों की गलती, क्या दुर्घटना रोकी जा सकती थी आदि पहलूओं की जाँच करेगी। कोल इंडिया ने तो कमेटी गठित कर व मृतकों को मुआवजे की घोषणा कर पल्ला झाड़ लिया, लेकिन कई सवाल आज भी अनुत्तरित हैं। आखिर इन सवालों के जवाब कौन देगा?

सवाल उठता है कि इस जोन को वर्षों पहले डेंजर जोन घोषित किया गया था, इसके बावजूद 2012 में यहां महालक्ष्मी खनन कम्पनी को खनन की अनुमति क्यों दी गयी? दूसरा सवाल यह कि ईसीएल के सीएमडी व प्रबंधक ने अपने दो-तीन दिन पहले किये गये निरीक्षण में यहां और अधिक खनन की अनुमति क्यों दी?

मामला साफ है कि इन सवालों के जवाब कभी नहीं मिलेंगे, क्योंकि इसके जवाब में कोल प्रबंधन व कोल माफिया दोनों फंसेंगे और सरकार पर भी फंदा कसेगा। हैरतनाक है कि दुर्घटना घटने के 24 घंटे बाद पटना व रांची से रेस्क्यू टीम पहुँची, क्योंकि वहाँ कोई रेस्क्यू टीम मौजूद ही नहीं थी। इसीएल प्रबंधन व महालक्ष्मी खनन कम्पनी ने दुर्घटना के बाद डीजीपी व मुख्य सचिव के दुर्घटनास्थल के दौरे की सूचना पाकर घटनास्थल से मलबा हटाने के बजाय रातोंरात वहाँ सड़क बना दी गयी। 30 दिसम्बर को डीजीपी व मुख्य सचिव जिस जगह पर खड़े होकर मुआयना कर रहे थे,

वहाँ नीचे मलबे में 41 कर्मी और मशीनें दबी हुई थीं।

रेस्क्यू टीम द्वारा लगातार मलबा हटाने के बाद भी मात्र 16 लाशें ही मिल पायी और 25 लाशें अब तक भी नहीं मिल पायी है, प्रबंधन लीपापोती में लगा हुआ है। 12 जनवरी 2017 को झारखंड हाईकोर्ट ने ईसीएल (इस्टर्न कोल फील्ड लिमिटेड) की राजमहल कोल परियोजना के ललमटिया खदान हादसे को लेकर दायर जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए पूछा कि 1. इस हादसे में कितने कर्मियों की मौत हुई है? 2. कितने शव बरामद किये गये हैं? 3. कितने कर्मियों को खदान के अन्दर भेजा गया था? 4. कितने कर्मी अब तक लापता हैं? 5. अब तक क्या-क्या दस्तावेज जब्त किये गये हैं और क्या कार्रवाई की गयी है? 6. रेस्क्यू ऑपरेशन की क्या स्थिति है?

कोर्ट ने डायरेक्टर जनरल ऑफ माइंस शेफ्टी (डीजीएमएस) को शपथ पत्र दायर कर विस्तृत जवाब देने का निर्देश दिया है। इससे पूर्व डीजीएमएस की ओर से मौखिक रूप से बताया गया कि ललमटिया खदान का कोई माइनिंग प्लान स्वीकृत नहीं था। इसके लिए कोई अनुमति नहीं दी गयी थी। कार्यस्थलों पर सुरक्षा मानकों का उल्लंघन किया जा रहा था।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्राकृतिक संसाधनों की असीमित लूट की हवस का परिणाम है ललमटिया खदान हादसा। देश में नयी आर्थिक नीति लागू होने के बाद से कोयला उद्योग में बड़े पैमाने पर आउटसोर्सिंग का दौर शुरु हुआ। कोल इंडिया में वर्तमान में भूमिगत एवं खुली खदानों की कुल संख्या 452 है। फिलहाल 90 फीसदी खदानों में कोयला उत्पादन व ओबी रिमूवल का काम आउटसोर्सिंग कम्पनियाँ कर रही हैं।

खदानों में सुरक्षा को लेकर समय-समय पर दिखावटी रूप से सुरक्षा समिति की बैठक जरूर होती है, लेकिन किसी भी खदान में सुरक्षा नियमों का पालन नहीं होता है। अत्यधिक कोयला उत्पादन की हवस ने माइंस को मौत का कुआँ बना दिया है। ललमटिया खदान हादसा एक चेतावनी है कि प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन मत करो, अन्यथा इसके परिणाम भुगतने होंगे। लेकिन सरकारों से अत्यधिक दोहन न करने की आशा करना मूर्खता ही है। प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन को जल-जंगल-जमीन को उनके परंपरागत मालिकों को सौंपकर ही रोका जा सकता है और ललमटिया जैसे हादसों से भी छुटकारा पाया जा सकता है।

(जनज्वार से साभार)

खुदाई

मेरी ऊँगली और अँगूठे के बीच
टिकी है पुरानी सी कलम, बंदूक की तरह चुस्त-दुरुस्त
मेरी खिड़की के बाहर खनखनाती-किरकिराती
कंकरीली जमीन के भीतर धँसती कुदाल की आवाज
खुदाई कर रहे हैं मेरे पिता, मैं देखता हूँ नीचे
फूलों की क्यारी के बीच उनका तना हुआ पुट्ठा
कभी निहुरता नीचे, कभी ऊपर उठता
वे खेत खोदते ताल मिलाते झुकते-तनते
चला गया बीस बरस पहले मेरा मन
जहाँ वे आलू की खुदाई कर रहे थे।
कुदाल की ब.ट थामे मजबूत हाथों से
आलू के थाले पर मारते जोरदार गहरा दाब
धँसाते जमीन में और उकसाते बेंत को आगे धकिया कर
तो ताजा मिट्टी में सने आलू छितरा जाते
जिनको चुनकर हम महसूस करते
उनका कठिन परिश्रम अपनी नन्ही हथेली पर।
हे भगवान, यह बूढा आदमी तो अपने पिता की तरह ही भांजता है कुदाल।
मेरे दादा कोंड़ सकते थे दिन भर म. टोनर के दलदल म. दूसरे किसी भी आदमी से अधिक खेत।
एक बार मैं उनके लिये ले गया एक बोतल दूध
कागज की ढीली डाट लगा कर, खोल कर पी गये गटागट
फिर सीधे जुट गये और करीने से खींची डोल
और क्यारी बनाई, हाँफते हुए हौले हौले
खोद-खोद कर बना दिया सुन्दर खेत।
आलू के खेत की ठंडी खुशबू, पौधों के नीचे हलकी थपकी
निराई में निकले गीले कुश, मेड की छिलाई से उभर आई
मिट्टी से झाँकती ताजा कटी जड़ों की याद आ गयी मुझे
लेकिन मेरे पास कुदाल नहीं कि अनुसरण करूँ
उन जैसे लोगों का।
मेरी ऊँगली और अँगूठे के बीच
टिकी है पुरानी सी कलम,
इसी से खुदाई करूँगा में।

--आयरिश कवि सीमस हीनी

क्यूबा की जनता कामयाब होगी

क्यूबा क्रान्ति के नेता फिदेल कास्त्रो रुज द्वारा सातवीं पार्टी कांग्रेस में दिया गया आखिरी भाषण

संकट के कल में किसी जनता का नेतृत्व करना अतिमानवीय प्रयास की माँग करता है। उनके बिना बदलाव असम्भव होगा। इस तरह की सभा में जहाँ क्रान्तिकारी जनता द्वारा खुद ही चुने गये हजारों प्रतिनिधि इकट्ठा हैं जिनको उन्होंने खुद अपना प्राधिकार सौंपा है, क्योंकी यह सब उनके द्वारा जिन्दगी में हासिल किये गये सर्वोच्च सम्मान की नुमाइंदगी करता है, जिसमें एक क्रान्तिकारी होना भी शामिल है और जो हमारी चेतना की उपज है।

मैं समाजवादी क्यों बना, या सीधे-सीधे कहें तो मैं कम्युनिस्ट क्यों बना? वह शब्द जो ऐसे लोगों द्वारा सबसे ज्यादा तोड़-मरोड़कर और अपमानजनक रूप में बोला जाता है जिनको गरीबों, वंचितों का शोषण करने का विशेषाधिकार प्राप्त है, महज इसलिए कि वे उस भौतिक सम्पदा से वंचित हैं जो मेहनत, प्रतिभा और मानवीय उर्जा से पैदा होती है। कब से आदमी इस कशमकश में जी रहा है, अनन्त काल से, जिसका कोई ओर-छोर नहीं। मैं जानता हूँ कि आपको इसकी व्याख्या की जरूरत नहीं, लेकिन शायद कुछ सुननेवालों को हो।

मैं सरल भाषा में बोलता हूँ इसलिए यह अच्छी तरह समझ में आता है कि मैं लापरवाह, अतिवादी या अन्धा नहीं हूँ और न ही मैंने अपनी विचारधारा अपनी सहूलियत के हिसाब से अर्थशास्त्र की पढ़ाई करके हासिल की है।

जब मैं कानून और राजनीति शास्त्र का विद्यार्थी था तो मैंने कोई ट्यूशन नहीं किया जिसका उन दिनों काफी चलन था। बिलकुल, मैं उन दिनों 20 साल का था और मेरी खेल में और पर्वतारोहण में काफी दिलचस्पी थी। मार्क्सवाद-लेनिनवाद के अध्ययन में मदद करनेवाले किसी ट्यूशन पढ़नेवाले के बिना, मैं एक सिद्धान्तवादी से ज्यादा कुछ नहीं था और निश्चय ही मेरा सोवियत संघ पर पूरा भरोसा था। लेनिन की रचनाओं का क्रान्ति के 70 साल बाद वहाँ उल्लंघन हुआ। इतिहास का सबक क्या है! यह दावा किया जा सकता है कि रूसी क्रान्ति जैसी दूसरी घटना होने में 70 साल नहीं लगेंगे, इस क्रम में कि मानवता के सामने एक शानदार सामाजिक क्रान्ति का अनुभव हो जो उपनिवेशवाद और उसका सहचर, साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष की दिशा में एक बड़े कदम की निशानी बने।

हालाँकि आज धरती पर मंडरानेवाला सबसे बड़ा खतरा शायद आधुनिक शस्त्रागार की सबसे ज्यादा तबाही लानेवाली ताकत है जो इस गृह की शान्ति को खत्म करती है और धरती की सतह पर मौजूद जिन्दगी को असम्भव बनाती है।

प्रजातियाँ उसी तरह गायब हो जायेंगी जैसे डायनासोर गायब हो गया, शायद दूसरे नक्षत्रों के जीव-जन्तुओं का जमाना आये या हो सकता है कि सूरज इतना गरम हो जाये कि वह सौर मंडल के सारे गृह-उपग्रह को जला कर राख कर दे, जैसा कि बड़ी संख्या में वैज्ञानिक महसूस कर रहे हैं। अगर उनमें से कई लीगों के सिद्धान्त सही हैं, जिनसे हमारे जैसे साधारण लोग भी सचेत हैं, तो व्यवहारिक लोगों को तो और भी जानना चाहिए और उसके हिसाब से खुद को बदलना चाहिए। अगर हमारी प्रजाति लम्बे समय तक बची रही तो आनेवाली पीढियाँ हमसे बहुत ज्यादा जान जायेंगी, लेकिन पहले उनको एक विकट समस्या का समाधान करना होगा। करोड़ों इनसानों को कैसे खिलाया-पिलाया जाय जिनकी आज की सच्चाई उनके लिए जरूरी साफ पानी और प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता से मेल नहीं खा रही हैं?

आप में से कुछ लोग या ज्यादातर लोग हैरान हैं कि इस भाषण में राजनीति कहाँ है। मुझ पर भरोसा कीजिए, मुझे यह कहते हुए अफसोस हो रहा है, लेकिन इन मर्यादित शब्दों में ही राजनीति है। अगर असंख्य लोग इन सच्चाइयों के साथ हमारी परवाह करते हैं तथा आदम और हौव्वा के जमाने की तरह वर्जित फल खाना जारी नहीं रखते। अफ्रीका के प्यासे लोगों को पानी कौन पिलाएगा जिनके पास तकनीक नहीं है, बारिश नहीं, जलसे नहीं, रेट से भरे भूजल के सिवा कोई पानी का भण्डार नहीं? हम देखेंगे कि वे सरकारे इस पर काया कहती हैं जिनमें से लगभग सबने जलवायु की चिन्ता करते हुए समझौते पर दस्तखत किये हैं।

हमें इन मुद्दों पर लगातार प्रहार करना होगा और मैं यहाँ जरूरी बातों का जिक्र करने के अलावा ज्यादा विस्तार में नहीं जाना चाहता।

जल्दी ही मैं 90 साल का हो जाऊँगा, यह ख्याल मेरे दिमाग में पहले कभी नहीं आया होता और यह किसी प्रयास का नतीजा नहीं है, महज एक संयोग है। जल्द ही मैं भी वैसा ही हो जाऊँगा जैसा एक दिन सबको होना है। हमारी बारी आएगी, हम सब की बारी आएगी, लेकिन क्यूबा के कम्युनिस्ट उन विचारों के सबूत के रूप में मौजूद रहेंगे कि इस धरती पर, अगर हम उत्साह और गरिमा के साथ काम करें तो हम इन्सानों के लिए जरूरत के भौतिक और सांस्कृतिक सम्पदा का उत्पादन कर सकते हैं, और इसे हासिल करने के लिए हमें लगातार लड़ना होगा। लातिन अमरीका और दुनियाभर के अपने भाइयों को हम बताना चाहते हैं कि क्यूबा की जनता कामयाब होगी।

हो सकता है की इस सदन में मेरा यह आखिरी भाषण हो। मैंने कांग्रेस द्वारा चुनाव के लिए पेश किये गये सभी उम्मीदवारों को वोट दिया और आपने यहाँ आमंत्रित किया और मुझे सुना इसके लिए मैं आपकी सराहना करता हूँ। मैं आप सभी लोगों को और सबसे पहले कोम्पेनेरो राउल कास्त्रो को उनके शानदार प्रयासों के लिए बधाई देता हूँ।

हम अगले अभियान की ओर कूच करेंगे और जिन चीजों को हमें बेहतरीन बनाना है, पूरी निष्ठा और एकता की ताकत से बनायेंगे, ठीक वैसे ही जैसे मार्ती, मसिओ और गोमेज के अजेय अभियान।

संकट के इस दौर में छात्रों-नौजवानों की भूमिका

आज हमारा देश एक अभूतपूर्व संकट से गुजर रहा है। साम्राज्यवाद के आगे आत्मसमर्पण करके हमारे देश के हुक्मरानों ने एक विकट परिस्थिति को जन्म दिया है। साम्राज्यवादी देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अर्थव्यवस्था के साथ-साथ शिक्षा, संस्कृति, टेलीविजन, सिनेमा, साहित्य और कला के क्षेत्र में भी लगातार घुसपैठ करती जा रही हैं। उनका संश्रयकारी देशी शासक वर्ग इस काम में उनका भरपूर सहयोग कर रहा है। पहले जिन अश्लील फिल्मी दृश्यों या पत्र-पत्रिकाओं में छपने वाले चित्रों को देखकर लोगों की नजरें शर्म से झुक जाती थीं और पूरे देश में उन पर बहस उठ खड़ी होती थी, अब वे पूरे परिवार में सहज स्वीकार्य हैं। यह एक खतरनाक प्रवृत्ति है।

समाज के ऊपरी पायदान पर विराजमान उन मुट्ठीभर लोगों की आमदनी में पिछले 25 वर्षों के दौरान भरपूर इजाफा हुआ है। उदाहरण के लिए किसी बहुराष्ट्रीय कम्पनी के एक मैनेजर का एक साल का वेतन और भत्ते, उस कम्पनी के किसी कर्मचारी की जिन्दगी भर की कमाई से भी ज्यादा है। सर्वोच्च न्यायालय के एक वकील की एक घंटे की कमाई 2 लाख रुपये है जो एक मजदूर की दस वर्षों की कमाई के बराबर है। किसी वरिष्ठ नौकरशाह के मूल वेतन में जुड़ने वाले मँहगाई भत्ते की थोड़ी सी वृद्धि एक मजदूर के वेतन से ज्यादा होती है। आय में इतना भारी अन्तर अब से 30 साल पहले की कल्पना से बाहर था।

जाहिर है कि देश में मुट्ठीभर लोगों की एक जमात ऐसी है जिनके लिए यह गुलामी काफी फलदायी है। इसलिए इस नयी यवस्था को बनाए रखने में ही उनका स्वार्थ है। दूसरी ओर लगभग 80 प्रतिशत मेहनतकश आबादी को इस व्यवस्था में लुटने-पिटने और गुलामों से भी बदतर जिन्दगी जीने के लिए छोड़ दिया गया है। उनके लिए इस व्यवस्था का एक दिन बने रहना भी भारी बोझ है। समाज के ऊपरी तबकों के लिए हर रोज नये-नये स्वर्ग का निर्माण हो रहा है जिसकी झलक हमें सिनेमा के पर्दों और टीवी चैनलों पर देखने को मिलती है। दूसरी ओर, जीतोड़ मेहनत के बावजूद देश की अधिकांश आबादी के लिए रोटी, कपड़ा, मकान, इलाज और शिक्षा जैसी बुनियादी जरूरतों को पूरा कर पाना भी कठिन है।

यह सही है कि शिक्षा को व्यवसाय बनाकर फीसों में बेतहाशा वृद्धि करके हमारे शासकों ने गरीब तबके के छात्रों-नौजवानों को शिक्षा पाने के अधिकार से बेदखल कर दिया है। लेकिन बात यहीं तक सीमित नहीं है। एक तरफ मेधावी छात्र फीस वृद्धि के चलते आत्महत्या करने को मजबूर होते हैं तो दूसरी ओर किसानों-मजदूरों की आत्महत्या की खबरें आये दिन अखबारों में आती रहती हैं।

इस विकट परिस्थिति में छात्रों-नौजवानों के आगे एक ऐतिहासिक चुनौती आ खड़ी हुई है। क्या हम इस स्थिति को चुपचाप बर्दाशत करें? और इसे अपने भाग्य का लेख मानकर स्वीकार कर लें? इतिहास के मार्ग में आने वाली हर रुकावट को हटाते हुए, उसे आगे बढ़ाने का दायित्व छात्रों-नौजवानों के कंधे पर ही होता है।

सवाल यह है कि हम शुरुआत कहाँ से करें! भगतसिंह ने कहा था कि क्रान्ति की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है। दुनिया की किसी भी क्रान्ति के लिए नये विचार और नये संगठन के जरिए व्यापक जनता को जागृत करना पहला और जरूरी कदम होता है। अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए हमें भी यहीं से शुरुआत करनी होगी। जब समाज का शिक्षित वर्ग और व्यापक छात्र समुदाय ही अपने खिलाफ होने वाली सरकार की साजिशों से वाकिफ नहीं, तो शिक्षा से वंचित मजदूर-किसान और अन्य मेहनतकश जनता से भला हम कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि वे इनकी बारीकियों को समझेंगे। इसलिए सबसे पहले हमारी जिम्मेदारी बनती है अपनी गैर-जानकारी और लापरवाही से हम छुट्टी पायें। जब तक लोग अज्ञान के अँधेरे में पड़े रहेंगे तब तक अपनी दुख-दरिद्रता के लिए अपनी किस्मत को दोष देते रहेंगे। लेकिन ज्यों-ज्यों सच्चाई जानते जायेंगे वे अपने हकों के लिए आवाज उठाना शुरू कर देंगे।

वर्तमान समस्याओं और शासक वर्गों की साजिशों को समझने में एक बहुत बड़ी बाधा यह है कि आज शिक्षातंत्र और मीडिया द्वारा नयी पीढ़ी को इतिहासबोध, वैज्ञानिक चेतना, तर्क परकता और जनपक्षधर दृष्टिकोण से दूर करने के लिए उनके बीच अन्धविश्वास और भ्रामक विचारों का निरन्तर प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। शासक वर्ग की किसी भी नीति या समाज की किसी भी समस्या का समाधान करने के लिए हमारी कसौटी यही होनी चाहिए कि वह फैसला जन समुदाय के हित में है या नहीं। यही सूत्र शासक वर्ग के भ्रामक शब्दजाल को काटने तथा सही विश्लेषण करने और सही नतीजे तक पहुँचने में सहायक होगा।

नौजवान दोस्तो! घुटनों में सर छुपाकर बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। उठकर खड़े हो जाओ। सरकार के रहस्यमय झूठ के साथ समझो इनके धोखे और मक्कारी को। इस रहस्य को समझने का प्रयास करो कि कैसे मुट्ठीभर लोग आपस में साजिशें रचते हैं और देश की एक अरब आबादी को भेड़-बकरी की तरह हाँकते हैं और फिर भी उन्हें कहीं से कोई प्रबल चुनौती नहीं मिल रही है। देश की युवा पीढ़ी निराशा के उन्माद में आतंकवादी बन जाय, अपराधी बन जाय तो उन्हें कोई गम नहीं, कोई परेशानी नहीं, क्योंकि उनसे निपटना उनके लिए कोई कठिन चुनौती नहीं। उन्हें डर है- क्रान्तिकारी विचारों से। उन विचारों से डर है जिन्हें एक बार जनता आत्मसात कर ले और उसे अमली जामा पहनाने में जी जान से जुट जाये तो उन चन्द मदारियों का खेल खत्म होना निश्चित है।

नौजवान दोस्तो! धूल और राख की परतों के नीचे दबे, मानवता के उच्चतम आदर्शों, सपनों और विचारों से अपने आपको सुसज्जित करते हुए एक नये समाज के निर्माण में लग जाना ही हमारी जिन्दगी की असली सार्थकता होगी।

इन्कलाब जिन्दाबाद!